CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ISSN No. 0971-796 X

102

प्राकृत विद्या

वर्ष 14, अंक 4,
वर्ष 15, अंक 1

संयुक्तांक

जनवरी–जून 2003 ई.

अनोखे

गुरु – शिष्य

दीवानबहादुर आण्णासाहेब लट्ठे

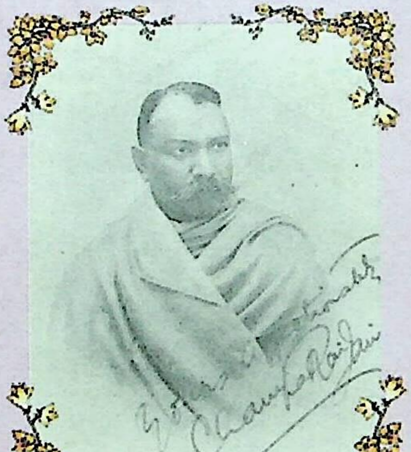

बैरिस्टर चम्पतराय जैन

4823

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भारत में शिक्षा देनेवाले गुरु-शिष्यों की परम्परा का यशस्वी वर्णन अनेकत्र प्राप्त होता है; किन्तु जिन्होंने कभी कोई ग्रन्थ न पढ़ाया हो, अथवा कोई कला या विद्या न सिखाई हो, ऐसे भी गुरु और उनके कृतज्ञ-शिष्य होने का कोई मर्मस्पर्शी निदर्शन है, तो वे हैं दीवानबहादुर आण्णा साहेब जी लट्ठे एवं बैरिस्टर चम्पतराय जी।

इस विषय में लट्ठे जी की जीवनीपरक अंग्रेजी पुस्तक में जो उल्लेख है, उसका मूलानुगामी हिन्दी-अनुवाद यहाँ प्रस्तुत है— "श्री आण्णा बाबा जी लट्ठे मेरे गुरु हैं, क्योंकि 'जैनधर्म मात्र मरना सिखानेवाला (सल्लेखनापरक) धर्म है' —ऐसी मेरी समझ थी। श्री लट्ठे जी ने मुझे जैनधर्म को सिखाया कि जैनधर्म 'कैसे जिऐं और कैसे मरें' —इन दोनों प्रकारों को सिखानेवाला धर्म है। जबतक मनुष्य जिए, तब तक उसके लिए आत्मज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए, तथा मरण के समय आत्मध्यानपूर्वक मरे —ऐसा कहनेवाला जैनधर्म है। इसकारण से मेरी भ्रांति दूर हो गई और धर्मांतरण करने का विचार मैंने छोड़ दिया। उसके बाद जैनधर्म का अभ्यास करके मैंने जैनधर्म संबंधी पुस्तक लिखी। इसका श्रेय मेरे गुरुजी लट्ठे जी के लिए है।

यह उद्‌गार सन् 1932 ई. में स्तबनिधि में 'दक्षिण भारत जैनसभा' के अध्यक्ष-पद से बोलते हुए बैरिस्टर चम्पतराय जी ने व्यक्त किए। इसका उत्तर देते हुए श्री लट्ठे जी ने बताया कि मैंने जैनधर्म-संबंधी एक छोटा-सा ग्रन्थ लिखा, परन्तु बैरिस्टर चम्पतराय जी ने जैनधर्म-संबंधी अनेक मोटे-मोटे ग्रन्थ लिखे। इससे गुरु की अपेक्षा शिष्य कितना आगे गया है, इसकी कल्पना आप कर सकते हैं। और क्या कहें, गुरु की अपेक्षा शिष्य सवाया हो गया है। इसलिए मैं उन्हें धन्यवाद देता हूँ।"

वास्तविक स्थिति यह है कि बैरिस्टर चम्पतराय जी ने विलायत से वकालत पढ़कर आने के बाद जब जैनधर्म और समाज की स्थिति देखी, तो उन्हें ऐसा लगा कि 'इसमें मात्र सल्लेखना या समाधिमरण के लिए धर्म का निर्धारण है। अत: मरना सिखानेवाले धर्म में रहने से क्या फायदा?' —ऐसा सोचकर उन्होंने ईसाईधर्म अंगीकार करने का मन बनाया। जब यह बात श्री लट्ठे जी को पता चली, तो उन्होंने जैनधर्म की व्यापकता के बारे में उन्हें समझाया। तब चम्पतराय जी ने धर्मान्तरण का विचार तो त्याग ही दिया, उन्हें सन्मार्ग दिखानेवाले श्री लट्ठे जी को अपना 'गुरु' माना तथा जीवनभर इसे कृतज्ञभाव से निभाया। फिर श्री चम्पतराय जी ने जैनधर्म-दर्शन का गहन अध्ययन कर युग की माँग के अनुरूप इसके अनेक पक्षों पर अंग्रेजी भाषा में पुस्तकें लिखीं। साथ ही गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर द्वारा संस्थापित 'शांतिनिकेतन' में ई. सन् 1927 से वर्षों तक आपने जैनधर्म-दर्शन का अध्यापन कार्य भी किया।

—सम्पादक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उदयचन्द्र
वाराणसी

ISSN No. 0971-796 x

4823

।। जयदु सुद-देवदा ।।

प्राकृत-विद्या
पागद-विज्जा

PRAKRIT-VIDYA
Pagad-Vijja

प्राकृत, अपभ्रंश एवं अन्य भारतीय भाषाओं, संस्कृति एवं जैनविद्या अध्ययन की समर्पित त्रैमासिकी शोध-पत्रिका

The devoted quarterly research Journal of Prakrit, Apabhramsha and other Indian languages, Culture and Jainology studies

वीरसंवत् 2529 जनवरी-जून '2003 ई. वर्ष 14 अंक 4, वर्ष 15 अंक 1
Veersamvat 2529 January-June '2003 Year 14-15, Issue 4 & 1
आचार्य कुन्दकुन्द समाधि-संवत् 2015

मानद प्रधान सम्पादक
प्रो. (डॉ.) राजाराम जैन
निदेशक, कुन्दकुन्द भारती जैन शोध संस्थान

Hon. Chief Editor
PROF. (DR.) RAJA RAM JAIN
Director, K.K.B. Jain Research Institute

मानद सम्पादक *Hon. Editor*
डॉ. सुदीप जैन DR. SUDEEP JAIN
एम.ए. (प्राकृत), पी-एच.डी. *M.A. (Prakrit), Ph.D.*

प्रकाशक
श्री सुरेश चन्द्र जैन
मंत्री
श्री कुन्दकुन्द भारती ट्रस्ट

Publisher
SURESH CHANDRA JAIN
Secretary
Shri Kundkund Bharti Trust

★ प्रति अंक – बीस रुपये (भारत) 2.0 $ (डालर) भारत के बाहर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परामर्शदाता - श्री पारसदास जैन

सम्पादक-मण्डल

प्रो. (डॉ.) प्रेम सुमन जैन
प्रो. (डॉ.) शशिप्रभा जैन
डॉ. उदयचन्द्र जैन
डॉ. वीरसागर जैन

प्रबन्ध सम्पादक

डॉ. सत्यप्रकाश जैन

श्री कुन्दकुन्द भारती (प्राकृत भवन)
18-बी, स्पेशल इन्स्टीट्यूशनल एरिया,
नई दिल्ली-110067
फोन (011) 6564510, 6513138

Kundkund Bharti (Prakrit Bhawan)
18-B, Spl. Institutional Area
New Delhi-110067
Phone (91-11) 6564510, 6513138

आचार्य कुन्दकुन्द का काल-निर्णय

आचार्य कुन्दकुन्द ईसापूर्व प्रथम शताब्दी में हुए थे, ऐसा समस्त निर्विवाद विद्वानों ने एकमत से स्वीकार किया है। 'अभिधान राजेन्द्रकोश' के कर्त्ता सुप्रसिद्ध श्वेताम्बर आचार्य राजेन्द्रसूरि जी लिखते हैं—

कुन्दकुन्द (पु.) स्वनामख्यातो दिगम्बराचार्य:, भद्रबाहुर्गुप्तिगुप्तोमाघनन्दिर्जिनचन्द्र: कुन्दकुन्दाचार्य इति तत्पट्टावल्यां शिष्यपरम्परा। अयमाचार्यो विक्रम सं. 49 वर्षे वर्तमान आसीत्। अस्यैव वक्रग्रीव: एलाचार्य: गृद्धपिच्छ: मदननन्दि दिव्यपराणि नामानि। —*(अभिधानराजेन्द्रकोश:, भाग 3, पृष्ठ 577)*

विभिन्न पट्टावलियों, शिलालेखों प्रशस्तियों एवं ग्रन्थों के आधार पर पं. बलभद्र जी ने आचार्य कुन्दकुन्द का कालगत परिचय इसप्रकार दिया है— उनका जन्म आन्ध्र प्रान्त में कुन्दकुन्दपुरम् में शार्वरी नाम संवत्सर माघ शुक्ला 5, ईसापूर्व 108 में हुआ था। उन्होंने 11 वर्ष की अल्पायु में श्री श्रमण मुनि-दीक्षा ली तथा 33 वर्ष तक मुनिपद पर रहकर ज्ञान और चारित्र की सतत् साधना की। 44 वर्ष की आयु में (ई.पू. 64) चतुर्विध (श्रमण, श्रमणा और श्रावक, श्राविका) संघ ने उन्हें आचार्य-पद पर प्रतिष्ठित किया। वे 51 वर्ष, 10 मास, 15 दिन इस पद पर विराजमान रहे। उन्होंने 95 वर्ष, 10 मास, 15 दिन की दीर्घायु पायी और ई.पू. 12 में समाधि-मरण द्वारा स्वर्गारोहण किया।

आचार्य कुन्दकुन्द के दिव्य-अवदान के कारण उन्हें प्रत्येक मांगलिक कार्य में मंगल-चतुष्टय के अंतर्गत सादर-स्मरण किया जाता है—

मंगलं भगवदो वीरो, मंगलं गोदमो गणी।
मंगलं कोण्डकुंदाइ, जेण्ह धम्मोत्थु मंगलं।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुक्रम

क्र.	शीर्षक	लेखक	पृष्ठ सं.
01.	मंगलाचरण : मन्दालसा स्तोत्र	आचार्य शुभचन्द्र	4
02.	सम्पादकीय : श्रुत-परम्परा का महत्त्व	डॉ. सुदीप जैन	8
03.	देश को नाम देने के लिए खुद को भरत......	सूर्यकान्त बाली	13
04.	भारतीय वास्तुकला के विकास में जैनधर्म का योगदान	प्रो. कृष्णदत्त वाजपेयी	17
05.	उत्तरमध्यकालीन इतिहास, साहित्य एवं कला का संगम तीर्थ : गोपाचल	प्रो. (डॉ.) राजाराम जैन	22
06.	स्वास्तिक का चक्रव्यूह	डॉ. रमेश जैन	31
07.	हे पूज्य गुरु शत-शत प्रणाम (हिन्दी कविता)	अरुण कुमार जैन इंजीनियर	35
08.	'आदर्श' और 'आत्मा'	श्रीमती रंजना जैन	37
09.	शांतिनिकेतन वे दिन, वे लोग	हीरालाल जैन	40
10.	जैनधर्म और भगवान् महावीर के बारे में महापुरुषों के उद्‌गार	डॉ. सुदीप जैन	44
11.	भगवान् महावीर की जन्मस्थली : कुण्डपुर (वासोकुण्ड)	डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल	51
12.	प्राकृतभाषा में लोरी हिन्दी से प्राकृत-रूपान्तरण	डॉ. वीरसागर जैन	62
13.	प्राच्य भारतीय अभिलेख एवं प्राकृतभाषा	डॉ. शशिप्रभा जैन	63
14.	पज्जावरण-रक्खणा (प्राकृत कविता)	डॉ. उदयचन्द्र जैन	68
15.	विण्णाणं किं? भूयं पंजोगं (प्राकृत कविता)	प्रभात कुमार दास	70
16.	बंकापुर के जिनालय	अप्पण्ण नरसप्पा हंजे, टी.आर. जोडट्टी	71
17.	आण्णासाहब लट्ठे जी का जैन-स्त्री-विषयक चिंतन और कार्य	डॉ. पद्‌मजा आ. पाटील	78
18.	पूजनीय हैं संत हमारे ! (हिन्दी कविता)	अनूपचन्द न्यायतीर्थ	88
20.	प्रधानमंत्री सचिवालय का एक महत्त्वपूर्ण पत्र		89
22.	पुस्तक-समीक्षा	डॉ. सुदीप जैन एवं प्रो. राजाराम जैन	90
23.	एक विशेष पत्र		95
24.	अभिमत		96
25.	समाचार दर्शन		98
26.	इस अंक के लेखक-लेखिकाएँ		111

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मंगलाचरण

मन्दालसा स्तोत्र

—आचार्य शुभचन्द्र

सिद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरंजनोऽसि, संसारमाया-परिवर्जितोऽसि।
शरीरभिन्नस्त्यज सर्वचेष्टां मन्दालसा-वाक्यमुपास्व पुत्र।। 1।।

अर्थ :— मन्दालसा अपने पुत्र कुन्दकुन्द को लोरी सुनाती हुई कहती है कि हे पुत्र! तुम सिद्ध हो, तुम बुद्ध हो, केवलज्ञानमय हो, निरंजन अर्थात् सर्व कर्ममल से रहित हो, संसार की मोह-माया से रहित हो, इस शरीर से सर्वथा भिन्न हो; अत: सभी (शारीरिक) चेष्टाओं का परित्याग करो। हे पुत्र ! मन्दालसा के वाक्य को सेवन करो अर्थात् हृदय में धारण करो। (यहाँ पर कुन्दकुन्द की माँ अपने पुत्र को जन्म से ही लोरी सुनाकर उसके शुद्धात्म-द्रव्य की ओर स्मरण कराती है, अत: यह कथन शुद्ध निश्चयनय की अपेक्षा से है, जो उपादेय है।)

ज्ञाताऽसि दृष्टाऽसि परमात्मरूपी अखण्डरूपोऽसि गुणालयोऽसि।
जितेन्द्रियस्त्वं त्यज मानमुद्रां मन्दालसा-वाक्यमुपास्व पुत्र।। 2।।

अर्थ :— हे पुत्र ! तुम ज्ञाता हो, दृष्टा हो, जो रूप परमात्मा का है तुम भी उसी रूप हो, अखण्ड हो, गुणों के आलय/घर हो अर्थात् अनन्त-गुणों से युक्त हो, तुम जितेन्द्रिय हो, अत: तुम मान-मुद्रा को छोड़ो। (मानव-पर्याय की प्राप्ति के समय सर्वप्रथम मानकषाय ही उदय में आती है, उस कषाय से युक्त मुद्रा को त्यागने के लिए माँ ने उपदेश दिया है।) हे पुत्र ! मन्दालसा के इन वाक्यों को हृदय में धारण करो।

शान्तोऽसि दान्तोऽसि विनाशहीन: सिद्धस्वरूपोऽसि कलंकमुक्त:।
ज्योतिस्वरूपोऽसि विमुञ्च मायां मन्दालसा-वाक्यमुपास्व पुत्र।। 3।।

अर्थ :— माँ मन्दालसा अपने पुत्र कुन्दकुन्द को उसके स्वरूप का बोध कराती हुई उपदेश करती है कि हे पुत्र ! तुम शान्त हो अर्थात राग-द्वेष से रहित हो, तुम इन्द्रियों का दमन करनेवाले स्वरूप हो, आत्मस्वरूपी होने के कारण अविनाशी हो, सिद्ध-स्वरूपी हो, कर्मरूपी कलंक से रहित हो, अखण्ड केवलज्ञानरूपी ज्योति-स्वरूप हो, अत: हे पुत्र!

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तुम माया को छोड़ो। मन्दालसा के इन वाक्यों को हृदय में धारण करो।

एकोऽसि मुक्तोऽसि चिदात्मकोऽसि चिद्रूपभावोऽसि चिरंतनोऽसि।

अलक्ष्यभावो जहि देहमोहं मन्दालसावाक्यमुपास्व पुत्र।। 4।।

अर्थ :— माँ मन्दालसा लोरी गाती हुई अपने पुत्र कुन्दकुन्द को कहती है कि हे पुत्र ! तुम एक हो, सांसारिक बन्धनों से स्वभावतः मुक्त हो, चैतन्यस्वरूपी हो, चैतन्यस्वभावी आत्मा के स्वभावभावरूप हो, अनादि-अनन्द हो, अलक्ष्यभावरूप हो; अतः हे पुत्र ! शरीर के साथ मोह-परिणाम को छोड़ो। हे पुत्र ! मन्दालसा के इन वाक्यों को हृदय में धारण करो।

निष्कामधामासि विकर्मरूपा रत्नत्रयात्मासि परं पवित्रं।

वेत्तासि चेतोऽसि विमुञ्च कामं मन्दालसावाक्यमुपास्व पुत्र।। 5।।

अर्थ :— जहाँ कोई कामना ही नहीं हैं— ऐसे मोक्षरूपी धाम के निवासी हो, द्रव्यकर्म तज्जन्य भावकर्म एवं नोकर्म आदि सम्पूर्ण कर्मकाण्ड से रहित हो, रत्नत्रयमय आत्मा हो, शक्ति की अपेक्षा केवलज्ञानमय हो, चेतन हो; अतः हे पुत्र ! सांसारिक इच्छाओं व ऐन्द्रियिक सुखों को छोड़ो और मन्दालसा के इन वाक्यों को हृदय में धारण करो।

प्रमादमुक्तोऽसि सुनिर्मलोऽसि अनन्तबोधादिचतुष्टयोऽसि।

ब्रह्मासि रक्ष स्वचिदात्मरूपं मन्दालसावाक्यमुपास्व पुत्र।। 6।।

अर्थ :— अपने पुत्र को शुद्धात्मा के प्रति इंगित करती हुई कुन्दकुन्द की माँ मन्दालसा लोरी के रूप में फिर कहती है— तुम प्रमादरहित हो, क्योंकि प्रमाद कषायजन्य है, सुनिर्मल अर्थात् अष्टकर्मों से रहित सहजबुद्ध हो, चार घातियाकर्मों के अभाव में होने वाले अनन्तज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्यरूप चतुष्टय से युक्त हो, तुम ब्रह्म तथा शुद्धात्मा हो; अतः हे पुत्र ! अपने चैतन्यस्वभावी शुद्ध-आत्मस्वरूप की रक्षा करना। माँ मन्दालसा के इन वाक्यों को अपने हृदय में सदैव धारण करना।

कैवल्यभावोऽसि निवृत्तयोगी निरामयी ज्ञातसमस्ततत्त्वम्।

परात्मवृत्तिस्स्मर चित्स्वरूपं मन्दालसावाक्यमुपास्व पुत्र।। 7।।

अर्थ :— तुम कैवल्यभावरूप हो, योगों से रहित हो, जन्म-मरण-जरा आदि रोगों से रहित होने के कारण निरामय हो, समस्त तत्त्वों के ज्ञाता हो, सर्वश्रेष्ठ निजात्मतत्त्व में चरण करनेवाले हो; हे पुत्र ! अपने चैतन्यस्वरूपी आत्मा का स्मरण करो। हे पुत्र! माँ मन्दालसा के इन वाक्यों को सदैव अपने हृदय में धारण करना।

चैतन्यरूपोऽसि विमुक्तभावो भावाविकर्मासि समग्रवेदी।

ध्याय प्रकामं परमात्मरूपं मन्दालसावाक्यमुपास्व पुत्र।। 8।।

अर्थ :— माँ मन्दालसा झूले में झूलते हुए पुत्र कुन्दकुन्द को शुद्धात्मस्वरूप की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घुट्टी पिलाती हुई लोरी कहती है— हे पुत्र ! तुम चैतन्यस्वरूप हो, सभी विभाव-भावों से पूर्णतया मुक्त हो, सभी कर्मों से रहित हो, सम्पूर्ण लोकालोक के ज्ञाता हो, परमोत्कृष्ट एक अखण्ड ज्ञान-दर्शनमय सहजशुद्धरूप जो परमात्मा का स्वरूप है, वह तुम स्वयं हो; अत: अपने परमात्मस्वरूप का ध्यान करो। हे पुत्र ! मन्दालसा के इन वाक्यों को अपने हृदय में धारण करो।

इत्यष्टकैर्या पुरतस्तनूजं विबोधनार्थं नर-नारिपूज्यम्।
प्रावृज्य भीता भवभोगभावात् स्वकैस्तदाऽसौ सुगतिं प्रपेदे।। 9।।

अर्थ :— इन आठ श्लोकों के द्वारा माँ मन्दालसा ने अपने पुत्र कुन्दकुन्द के आगे उसके सद्बोधप्राप्ति के लिए उपदेश किया है, जिससे वह सांसारिक भोगों से भयभीत होकर समस्त नर-नारियों से पूज्य श्रमण-दीक्षा धारणकर सद्गति हो प्राप्त करे।

इत्यष्टकं पाप-पराङ्मुखो यो मन्दालसायाः भणति प्रमोदात्।
स सद्गतिं श्रीशुभचन्द्रमासि संप्राप्य निर्वाणगतिं प्रपेदे।। 10।।

अर्थ :— इसप्रकार जो भव्यजीव मन्दालसा द्वारा रचित इन आठ श्लोकमय स्तोत्र को पापों से पराङ्मुख होकर व हर्षपूर्वक पढ़ता है, वह श्री शुभचन्द्ररूप सद्गति को प्राप्त होकर क्रमश: मोक्ष को प्राप्त करता है। ◆◆

दिगम्बर-परम्परा में करणीय कार्य

मैंने दिगम्बर-परम्परा की एक भी ऐसी संस्था नहीं देखी या सुनी कि जिसमें समग्र-दर्शनों का आमूल अध्ययन-चिंतन होता हो। या उसके प्रकाशित किये हुए बहुमूल्य प्राचीन-ग्रन्थों का संस्करण या अनुवाद ऐसा कोई नहीं देखा, जिसमें यह विदित हो कि उसके सम्पादकों या अनुवादकों ने उतनी विशालता व तटस्थता से उन मूलग्रन्थों के लेखकों की भाँति नहीं, तो उनके शतांश या सहस्रांश भी श्रम किया हो।

अंत में दिगम्बर-परम्परा के सभी निष्णात और उदार पंडितों से मेरा नम्र निवेदन है कि वे अब विशिष्ट शास्त्रीय अध्यवसाय में लगकर सर्व-संग्राह्य हिंदी-अनुवादों की बड़ी भारी कमी को जल्दी से जल्दी दूर करने में लग जाएँ और प्रस्तुत 'कुमुदचन्द्र' के संस्करण को भी भुला देने वाले अन्य महत्त्वपूर्ण-ग्रन्थों का संस्करण तैयार करें।

विद्याप्रिय और शास्त्रभक्त दिगम्बर-धनिकों से मेरा अनुरोध है कि वे ऐसे कार्यों में पंडित-मंडली को अधिक से अधिक सहयोग दें।

—(सुखलाल संघवी, हिन्दू विश्वविद्यालय, दिनांक 26.4.38, 'न्यायकुमुदचन्द्रः', प्राक्कथन, पृष्ठ, X, XII)

◆◆

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्पादकीय

श्रुत-परम्परा का महत्त्व

—डॉ. सुदीप जैन

भारतवर्ष में दो मूल चिन्तनधाराएँ मानी गई है— श्रमण एवं वैदिक। इनमें श्रमणधारा निर्ग्रन्थ जैन-परम्परा का ही मूलत: प्रातिनिध्य करती है, जबकि वैदिकधारा के अन्तर्गत वेदानुयायी दर्शनों एवं धर्मों का अन्तर्भाव होता है। दोनों ही परम्पराओं में अपने मूलभूत-तत्त्वज्ञान को एक विशिष्ट-संज्ञा से संज्ञित किया गया है। श्रमण-परम्परा अपने तत्त्वज्ञान को 'श्रुत'-संज्ञा से अभिहित करती है, तो वैदिक-परम्परा ने अपने मूल वेदों को 'श्रुति' नामकरण दिया है। सूक्ष्मता से विचार करें, तो हम पाते हैं कि ये दोनों शब्द 'श्रु' श्रवणे धातु से निष्पन्न हैं, जिसका सामान्य-अर्थ 'सुनना' है। भूतकालवाची कृदन्त के 'क्त' प्रत्यय से 'श्रुत' शब्द बनता है, जिसका सामान्य शब्दार्थ 'सुना गया' या 'ध्यान लगाकर सुना हुआ' अथवा 'श्रवण-परम्परा से प्राप्त' होता है। जबकि भाववाचक 'क्तिन्' प्रत्यय से निष्पन्न 'श्रुति'-शब्द विवरण, संवाद, समाचार आदि अर्थों को सूचित करता है। श्रमण एवं वैदिक परम्पराओं में प्रचलित इन शब्दों के रूढ़-अर्थ—"तीर्थंकरों के दिव्य-उपदेश (दिव्यध्वनि) को सुनकर प्राप्त हुआ तत्त्वज्ञान, जोकि बाद में भी गुरु के उपदेश एवं शिष्य द्वारा श्रवणकर आत्मसात् करने की परम्परा के चलता रहा और जिसे 'आगम' की भी संज्ञा प्राप्त हुई, वह 'श्रुत' है।" तथा मंत्रदृष्टा कहे जानेवाले ऋषियों ने जो तत्त्वज्ञानपरक-चिन्तन वेदवाक्यों के रूप में प्रस्तुत किया, उसे अन्य ऋषियों ने सुनकर श्रवण-परम्परा के रूप में आगे प्रवर्तित किया, इसे 'श्रुति' संज्ञा प्राप्त हुई।

इन दोनों में एक बात सामान्य प्रतीत होती है, वह यह कि दोनों परम्पराओं में मूलत: तत्त्वज्ञान उपदेश और श्रवण की परम्परा से आगत है, इसीलिए दोनों ने 'श्रवणार्थक-शब्दों ('श्रुत' एवं 'श्रुति') का प्रयोग इसके लिए किया है। चूँकि दोनों में ही तत्त्वज्ञान निहित था; अत: इन दोनों परम्पराओं में इसके लिए जो नामान्तर प्रयुक्त मिलते हैं, वे भी 'ज्ञान'-अर्थ के संवाहक है। श्रमण-परम्परा में 'श्रुत' के लिए 'आगम' शब्द का प्रयोग हुआ है, जो कि "आ सन्तात् गमयति, ज्ञानं कारयति इति आगम:" की व्युत्पत्ति के अनुसार 'पूर्णज्ञान करानेवाला' है। साक्षात् केवलज्ञानी भगवान् के ज्ञान में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एवं आगम के ज्ञान में आचार्यों ने मात्र 'प्रत्यक्ष' और 'परोक्ष' का भेद माना है, शेष समान माना है— **"स्याद्वाद-केवलज्ञाने सर्वतत्त्वप्रकाशने।**

भेदः साक्षात् असाक्षाच्च.................।।"

तथा वैदिक-परम्परा ने 'श्रुति' के लिए 'वेद' शब्द का प्रयोग किया है, जो 'विद्लृ ज्ञाने' —इस ज्ञानार्थक धातु से निष्पन्न है और इसका मूल-अर्थ भी 'ज्ञान' ही है।

यदि कोई मूलभूत-अन्तर है, तो वह है 'श्रुत' या 'आगम' की परम्परा वीतरागी, सर्वदर्शी केवलज्ञानी के द्वारा प्रवर्तित एवं राग-द्वेषरहित पूर्णज्ञान पर आधारित है; जबकि 'श्रुति' या 'वेद' की परम्परा 'अपौरुषेय' कही जाने पर भी उसके दृष्टा एवं पुरस्कर्ता ऋषिगण हैं।

यद्यपि तत्त्वज्ञान की दृष्टि से दोनों ही परम्पराएँ अतिप्राचीन हैं; फिर भी इनका मूलरूप 'श्रवण-परम्परा' से ही आगत है। इनका लिखित-रूप कब से है? —इसका सप्रमाण कोई मूल-आधार तो उपलब्ध नहीं है; क्योंकि कोई भी लिखित-पाण्डुलिपि डेढ़ हजार वर्ष से अधिक प्राचीन नहीं मिलती है; जबकि दोनों परम्पराएँ अपने तत्त्वज्ञान का लिपिबद्धीकरण इससे भी कई सौ वर्ष पहिले से मानती हैं। 1500 वर्ष से पहिले के लिखित-प्रमाण मात्र शिलालेखों के हैं, किन्तु उनमें इनमें से किसी भी परम्परा के मूल-तत्त्वज्ञान (श्रुत/आगम या श्रुति/वेद) को उत्कीर्णित नहीं किया गया है। हाँ, ईसापूर्वयुगीन सम्राट् अशोक एवं सम्राट् खारवेल के ऐतिहासिक अभिलेखों में श्रमण एवं वैदिक (ब्राह्मण) —दोनों परम्पराओं के उल्लेख अवश्य मिलते हैं। इतना विशेष है कि श्रमण-परम्परा के मूलमंत्र 'णमोकार मंत्र' की प्रारंभिक पंक्तियाँ 'आदि-मंगल' के रूप में सम्राट् खारवेल के शिलालेख में अवश्य प्राप्त होती हैं—

"णमो अरिहंतानं, णमो सवसिधानं"

यहाँ मैं श्रुत-परम्परा के विषय में कुछ विचार व्यक्त करना चाहता हूँ। श्रुत-परम्परा के उद्गम एवं महत्त्व के विषय में मनीषियों ने गंभीर-उद्गार व्यक्त किए हैं—

'एवं यत्केवलज्ञानमनुमानविजृम्भितम्।
नर्ते तदागमात् सिद्ध्येयन्न च तेन विनागमः।। 26।।
सत्यमर्थबलादेव पुरुषातिशयो मतः।
प्रभवः पौरुषेयोऽस्य प्रबन्धोऽनादिरिष्यते।। 27।।"

अर्थात्— आगम में उपदिष्ट सम्यग्दर्शनादि के बिना केवलज्ञान की सिद्धि (प्राप्ति) नहीं हो सकती और केवलज्ञान के बिना आगम की सिद्धि (निष्पत्ति) नहीं हो सकती, —यह बात सत्य है; क्योंकि आगमज्ञान के बल से ही पुरुष में केवलज्ञानादिरूप-अतिशय प्रकट होता है और उस अतिशय से आगम का प्रभाव होता है। सर्वज्ञ और आगम की अनादि सन्तान-परम्परा बीजांकुर-परम्परा की तरह चमकती रहती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"तीर्थाद् भवन्त: किल तत् भवद्भ्यो, मिथ्यो द्वयेषामिति हेतुभाव:।
अनादिसन्तान-कृतावतार-श्चकास्ति वीजांकुरवत् किलायम्।।"

—*(आचार्य अमृतचंद्र, लघुत्त्वस्फोट, पृष्ठ 67)*

अर्थ :— हे तीर्थंकर ! (वृषभदेव आदि) जिस तीर्थ (धर्म) से आप हुए हैं, वह तीर्थ (धर्म) भी आपसे प्रकट हुआ है। आपश्री का और धर्म-तीर्थ का इसप्रकार से परस्पर में यह कार्य और कारण या हेतु-हेतुमद्भाव है। और यह निश्चय से अनादि संतान-परम्परारूप से बीजांकुर की तरह चमकता रहता है।

श्रुत-परम्परा के विषय में आचार्य गुणभद्र की भविष्यवाणी—

"श्रुतं तपोभृतामेषां प्रणेश्यति परम्परा।
शेषैरपि श्रुतज्ञानस्यैकदेशस्तपोधनै:।।
जिनसेनानुगैर्वीरसेनै: प्राप्तमहर्द्धिभि:।
समाप्ते दु:षमाया: प्राक् प्रायशो वर्तयिष्यते।।"

—*(आचार्य गुणभद्र, उत्तरपुराण, 76-527-28)*

अर्थ :— यद्यपि तप:शील श्रुत-ज्ञानियों की परम्परा मिट जायेगी; पर फिर भी प्रात:स्मरणीय आचार्य वीरसेन तथा तदनुगामी आचार्य जिनसेन प्रभृति श्रुतवैभव के धनी, तपस्वी महाश्रमणों द्वारा श्रुत का एकदेश अंश दु:षम-पंचमकाल की समाप्ति से पूर्व तक संवर्तित रहेगा ही।

"तव जिनशासनविभवो, जयति कलावपि गुणानुशासनविभव:।
दोषकशासनविभव:, स्तुवन्ति चैनं प्रभा सुशासनविभव:।।"

—*(आचार्य समन्तभद्र, स्वयम्भूस्तोत्र)*

अर्थात् हे तीर्थंकर महावीर भगवन् ! आपके जैनशासन की राग-द्वेषादि दोषों को दूर, करनेवाले आपके गुणानुशासन की परम-महिमा इस कलिकाल में भी जयवंत हो रही है, और जिनके ज्ञान का माहात्म्य सर्वत्र आज भी प्रभावान है, ऐसे तीर्थंकर भगवान् महावीर के निकटवर्ती गौतम महर्षि गणधरादि मनस्वी-पुरुष भी आपके इस महिमामय सुशासन (जैनशासन) अहिंसा की स्तुति करते हैं।

जैन-सामान्य में श्रुत-परम्परा के प्रति जिज्ञासा एवं अनन्य-आदरभाव जागृत करने की दृष्टि से आचार्य लिखते हैं—

"ये यजन्ते श्रुतं भक्त्या, ते यजन्तेऽञ्जसा जिनम्।
न किंचिन्तरं प्राहुराप्ता हि श्रुत-देवयो:।।"

अर्थ :— जो श्रुत (आगम या द्वादशांगी जिनवाणी) की भक्तिपूर्वक पूजा करते हैं, वे वस्तुत: आप्त तीर्थंकर ऋषभदेव आदि की ही पूजन करते हैं। क्योंकि केवली सर्वज्ञ-भगवान् ने परमागम 'श्रुत' और वीतरागी जिनेन्द्र परमात्मा (का पूजन-अर्चन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करने) में परमार्थ से कोई अन्तर/भेद नहीं कहा है।

इस श्रुत की परम्परा के संरक्षण की दृष्टि से शास्त्रों को लिखे जाने एवं उन्हें सुपात्र व्यक्तियों को दिए जाने आदि का निर्देश भी आचार्यों ने दिया है। वे लिखते हैं—

"आगम-सत्थाइं लिहाविदूण दिज्जंति जं जहाजोंग्गं।
तं जाण सत्थदाणं जिणवयणज्झावणं च तहा।।"

—(आचार्य वसुनंदि, वसुनंदि श्रावकाचार, 237)

अर्थ :— जो आगमशास्त्र लिखवाकर यथायोग्य पात्रों को दिए जाते हैं, उसे 'शास्त्रदान' जानना चाहिए तथा तीर्थंकर ऋषभदेव से लेकर महावीरपर्यंत के जिनेन्द्रों के वचनों का (आगम का) अध्यापन कराना अर्थात् पढ़ाना भी 'शास्त्रदान' है।

यद्यपि आगमग्रन्थ आत्महितकारी तत्त्वज्ञान से ओतप्रोत है, फिर भी जिन लोगों की रुचि एवं प्रवृत्ति इनके अध्यापन या स्वाध्याय आदि में नहीं है, उनके बारे में आचार्य लिखते हैं— **"दुर्मेधेव सुशास्त्रे वा तरणी न चलत्यत:।"**

—(आचार्य शुभचंद्र, पाण्डवपुराण, 12/254)

अर्थ :— जैसे दुर्बुद्धि या अनाड़ी व्यक्ति से नाव चलाने पर भी नहीं चलती है, इसीप्रकार राग-द्वेष-मोह के अतिरेक से पीड़ित व्यक्ति की बुद्धि भी आत्महितकारी शास्त्रों में चलाने पर भी नहीं चलती है।

आचार्य गुणधर, धरसेन, पुष्पदन्त, भूतबलि, कुन्दकुन्द, उमास्वामी, समन्तभद्र, पूज्यपाद, अकलंक, विद्यानन्द स्वामी, अमृतचन्द्र सूरि आदि प्राचीन आचार्यों ने श्रुत-परम्परा का भलीभाँति संरक्षण, संपोषण तो किया ही; उसे आगामी सन्ततियों के लिए लिपिबद्ध कर एवं शिष्य-परम्परा को सिखाकर अपेक्षाकृत-चिरस्थायी भी बनाया। वर्तमान-काल में श्रुतसंरक्षण एवं श्रुतप्रभावना के कार्य में परमपूज्य आचार्य शांतिसागर जी, आचार्य समन्तभद्र जी, गणेश प्रसाद जी वर्णी, पं. गोपालदास जी बरैया, डॉ. ए.एन. उपाध्ये, डॉ. हीरालाल जैन, पं. कैलाश चन्द जी शास्त्री, पं. फूलचंद जी सिद्धान्ताचार्य, डॉ. महेन्द्र कुमार जी न्यायाचार्य, पं. कालप्पा निटवे शास्त्री आदि संतों एवं मनीषियों ने भी अभूतपूर्व कार्य किया है।

किंतु आज इस परम्परा के समर्थ ध्वजवाहक दृष्टिगोचर नहीं हो रहे हैं। हमारे पाँच हजार वर्ष प्राचीन माने जानेवाले 'कातंत्र-व्याकरण' को पढ़ानेवाले जैन-विद्वानों का ढूँढे भी पता नहीं चल रहा है, जो कि मात्र दो सौ वर्ष पहिले तक सारे देश में पढ़ाया जाता था। यह शोचनीय-स्थिति है। इसीप्रकार स्वतंत्र-भारत में संस्कृत को तो आजादी मिली है, किंतु प्राकृतभाषा को अभी भी आजादी नहीं मिली है। वह प्रचार-प्रसार में नहीं है। इसकी पोथियाँ वेष्टनों में बद्ध हैं। हमारे आगमों की भाषा का विधिवत् ज्ञान हमारे संतों और विद्वानों को भी नहीं है। यह गंभीर-चिंता का विषय है। इसके बारे में संतों, विद्वानों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व समाज को नैष्ठिक-प्रयत्न करना होगा। इसके बिना हम श्रुत-परम्परा का संरक्षण एवं प्रचार-प्रसार सक्षम-रीति से नहीं कर सकते हैं।

हमारे आगम-ग्रन्थ मूलत: प्राकृतभाषा में निबद्ध हैं। किन्तु यह खेद की बात है कि जैनसमाज ने आजतक एक प्राकृत-पाठशाला की स्थापना भी नहीं की है, जबकि संस्कृत की हजारों पाठशालाएँ जैनसमाज के द्वारा देशभर में खोली गई हैं। इसीलिए प्राकृतभाषा के ज्ञान और पठन-पाठन की परम्परा अनुपलब्ध हो जाने के कारण आज हमारे आगम-ग्रन्थों के मूलानुगामी विद्वान् प्राय: नहीं हैं, और आगामी पीढ़ी में भी इनकी उपलब्धता के कोई आसार नज़र नहीं आते। रही-सही कसर जैनग्रन्थों एवं अन्य लौकिक साहित्य के ग्रन्थों के मूल प्राकृत-अंश को हटाकर उसकी कृत्रिम संस्कृत-छाया देने की मनोवृत्ति ने पूरी कर दी है। हमें यह व्यामोह छोड़ना पड़ेगा तथा विद्वानों को यह संकल्प लेना होगा कि वे अपने प्रकाशनों में प्राकृत के मूलनामों और मूलपाठों को ही सुरक्षित रखें, तथा प्राकृतभाषा सीखने और सिखाने के लिए जो भी साधन उपलब्ध हैं, उनका सदुपयोग करते हुए लुप्तप्राय: प्राकृतभाषा को पुनर्जीवित करने का पुण्य-संकल्प लें।

विचार करें कि क्या हम अपनी श्रुत-परम्परा अपनी जिनवाणी माँ के हित में वास्तव में चिंतित भी हैं? तथा इस दिशा में हमारे प्रयत्न कितने सार्थक हैं? ❖❖

प्राकृत भी सारस्वत भाषा है

प्राय: मात्र संस्कृतभाषा को ही दैवी-वाक् या देववाणी कहा जाता है, जबकि देवी सरस्वती संस्कृत के साथ-साथ प्राकृतभाषा का भी समानरूप से प्रयोग करती थीं— यह प्रमाण महाकवि कालिदास ने अपने साहित्य में स्पष्टरूप से प्रस्तुत किया है।

'द्विधा प्रयुक्तेन च वाङ्मयेन, सरस्वती तन्मिथुनं नुनाव।
संस्कारपूतेन वरं वरेण्यं, वधुं सुखग्राह्य-निबंधनेन।।'

—*(महाकवि कालिदास, कुमारसंभव, 7-90)*

अर्थ :— सरस्वती देवी ने {शिव और पार्वती} के मिथुन=जोड़ी की दो तरह की काव्य वांग्मय द्वारा स्तुति की थी तथा श्रेष्ठवर शिवजी को संस्कार सम्पन्न पवित्र संस्कृतभाषा से तथा वधू पार्वती को सुखग्राह्य प्राकृतभाषा प्रबन्ध के द्वारा मंगलाष्टकपूर्वक शुभाशीर्वाद दिया।

'जे प्राकृतकवि परम सयाने, भाषों जिन हरिचरित बखाने।
भये जे अहहिं जे होहहिं आगे, प्रनवहुं सबहिं कपट सब त्यागे।।'

—*(तुलसी, रामचरितमानस 25, पृष्ठ 25)*

अर्थ :— प्राकृतभाषा के जो चतुर महाकवि हुए हैं, जिन्होंने भगवान् रामचन्द्र जी का पवित्र चरित्र बनाया है, वे हुए हैं, और भविष्य में आगे होंगे, मैं (तुलसीदास) उन सबको कपट रहित होकर प्रणाम करता हूँ। ◆◆

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करने) में परमार्थ से कोई अन्तर/भेद नहीं कहा है।

इस श्रुत की परम्परा के संरक्षण की दृष्टि से शास्त्रों को लिखे जाने एवं उन्हें सुपात्र व्यक्तियों को दिए जाने आदि का निर्देश भी आचार्यों ने दिया है। वे लिखते हैं—

"आगम-सत्थाइं लिहाविदूण दिज्जंति जं जहाजोंग्गं।
तं जाण सत्थदाणं जिणवयणज्झावणं च तहा।।"

—(आचार्य वसुनंदि, वसुनंदि श्रावकाचार, 237)

अर्थ :— जो आगमशास्त्र लिखवाकर यथायोग्य पात्रों को दिए जाते हैं, उसे 'शास्त्रदान' जानना चाहिए तथा तीर्थंकर ऋषभदेव से लेकर महावीरपर्यंत के जिनेन्द्रों के वचनों का (आगम का) अध्यापन कराना अर्थात् पढ़ाना भी 'शास्त्रदान' है।

यद्यपि आगमग्रन्थ आत्महितकारी तत्त्वज्ञान से ओतप्रोत है, फिर भी जिन लोगों की रुचि एवं प्रवृत्ति इनके अध्यापन या स्वाध्याय आदि में नहीं है, उनके बारे में आचार्य लिखते हैं— **"दुर्मेधेव सुशास्त्रे वा तरणी न चलत्यत:।"**

—(आचार्य शुभचंद्र, पाण्डवपुराण, 12/254)

अर्थ :— जैसे दुर्बुद्धि या अनाड़ी व्यक्ति से नाव चलाने पर भी नहीं चलती है, इसीप्रकार राग-द्वेष-मोह के अतिरेक से पीड़ित व्यक्ति की बुद्धि भी आत्महितकारी शास्त्रों में चलाने पर भी नहीं चलती है।

आचार्य गुणधर, धरसेन, पुष्पदन्त, भूतबलि, कुन्दकुन्द, उमास्वामी, समन्तभद्र, पूज्यपाद, अकलंक, विद्यानन्द स्वामी, अमृतचन्द्र सूरि आदि प्राचीन आचार्यों ने श्रुत-परम्परा का भलीभाँति संरक्षण, संपोषण तो किया ही; उसे आगामी सन्ततियों के लिए लिपिबद्ध कर एवं शिष्य-परम्परा को सिखाकर अपेक्षाकृत-चिरस्थायी भी बनाया। वर्तमान-काल में श्रुतसंरक्षण एवं श्रुतप्रभावना के कार्य में परमपूज्य आचार्य शांतिसागर जी, आचार्य समन्तभद्र जी, गणेश प्रसाद जी वर्णी, पं. गोपालदास जी बरैया, डॉ. ए.एन. उपाध्ये, डॉ. हीरालाल जैन, पं. कैलाश चन्द जी शास्त्री, पं. फूलचंद जी सिद्धान्ताचार्य, डॉ. महेन्द्र कुमार जी न्यायाचार्य, पं. कालप्पा निटवे शास्त्री आदि संतों एवं मनीषियों ने भी अभूतपूर्व कार्य किया है।

किंतु आज इस परम्परा के समर्थ ध्वजवाहक दृष्टिगोचर नहीं हो रहे हैं। हमारे पाँच हजार वर्ष प्राचीन माने जानेवाले 'कातंत्र-व्याकरण' को पढ़ानेवाले जैन-विद्वानों का ढूँढे भी पता नहीं चल रहा है, जो कि मात्र दो सौ वर्ष पहिले तक सारे देश में पढ़ाया जाता था। यह शोचनीय-स्थिति है। इसीप्रकार स्वतंत्र-भारत में संस्कृत को तो आजादी मिली है, किंतु प्राकृतभाषा को अभी भी आजादी नहीं मिली है। वह प्रचार-प्रसार में नहीं है। इसकी पोथियाँ वेष्टनों में बद्ध हैं। हमारे आगमों की भाषा का विधिवत् ज्ञान हमारे संतों और विद्वानों को भी नहीं है। यह गंभीर-चिंता का विषय है। इसके बारे में संतों, विद्वानों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व समाज को नैष्ठिक-प्रयत्न करना होगा। इसके बिना हम श्रुत-परम्परा का संरक्षण एवं प्रचार-प्रसार सक्षम-रीति से नहीं कर सकते हैं।

हमारे आगम-ग्रन्थ मूलत: प्राकृतभाषा में निबद्ध हैं। किन्तु यह खेद की बात है कि जैनसमाज ने आजतक एक प्राकृत-पाठशाला की स्थापना भी नहीं की है, जबकि संस्कृत की हजारों पाठशालाएँ जैनसमाज के द्वारा देशभर में खोली गई हैं। इसीलिए प्राकृतभाषा के ज्ञान और पठन-पाठन की परम्परा अनुपलब्ध हो जाने के कारण आज हमारे आगम-ग्रन्थों के मूलानुगामी विद्वान् प्राय: नहीं हैं, और आगामी पीढ़ी में भी इनकी उपलब्धता के कोई आसार नज़र नहीं आते। रही-सही कसर जैनग्रन्थों एवं अन्य लौकिक साहित्य के ग्रन्थों के मूल प्राकृत-अंश को हटाकर उसकी कृत्रिम संस्कृत-छाया देने की मनोवृत्ति ने पूरी कर दी है। हमें यह व्यामोह छोड़ना पड़ेगा तथा विद्वानों को यह संकल्प लेना होगा कि वे अपने प्रकाशनों में प्राकृत के मूलनामों और मूलपाठों को ही सुरक्षित रखें, तथा प्राकृतभाषा सीखने और सिखाने के लिए जो भी साधन उपलब्ध हैं, उनका सदुपयोग करते हुए लुप्तप्राय: प्राकृतभाषा को पुनर्जीवित करने का पुण्य-संकल्प लें।

विचार करें कि क्या हम अपनी श्रुत-परम्परा अपनी जिनवाणी माँ के हित में वास्तव में चिंतित भी हैं? तथा इस दिशा में हमारे प्रयत्न कितने सार्थक हैं? ❖❖

प्राकृत भी सारस्वत भाषा है

प्राय: मात्र संस्कृतभाषा को ही दैवी-वाक् या देववाणी कहा जाता है, जबकि देवी सरस्वती संस्कृत के साथ-साथ प्राकृतभाषा का भी समानरूप से प्रयोग करती थीं— यह प्रमाण महाकवि कालिदास ने अपने साहित्य में स्पष्टरूप से प्रस्तुत किया है।

'द्विधा प्रयुक्तेन च वाङ्मयेन, सरस्वती तन्मिथुनं नुनाव।
संस्कारपूतेन वरं वरेण्यं, वधुं सुखग्राह्य-निबंधनेन।।'

—(महाकवि कालिदास, कुमारसंभव, 7-90)

***अर्थ* :—** सरस्वती देवी ने {शिव और पार्वती} के मिथुन=जोड़ी की दो तरह की काव्य वांग्मय द्वारा स्तुति की थी तथा श्रेष्ठवर शिवजी को संस्कार सम्पन्न पवित्र संस्कृतभाषा से तथा वधू पार्वती को सुखग्राह्य प्राकृतभाषा प्रबन्ध के द्वारा मंगलाष्टकपूर्वक शुभाशीर्वाद दिया।

'जे प्राकृतकवि परम सयाने, भाषों जिन हरिचरित बखाने।
भये जे अहहिं जे होहहिं आगे, प्रनवहुं सबहिं कपट सब त्यागे।।'

—(तुलसी, रामचरितमानस 25, पृष्ठ 25)

***अर्थ* :—** प्राकृतभाषा के जो चतुर महाकंवि हुए हैं, जिन्होंने भगवान् रामचन्द्र जी का पवित्र चरित्र बनाया है, वे हुए हैं, और भविष्य में आगे होंगे, मैं (तुलसीदास) उन सबको कपट रहित होकर प्रणाम करता हूँ। ◆◆

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देश को नाम देने के लिए खुद को भरत बनाना होता है

—सूर्यकान्त बाली

आज कुछ नहीं करना, सिर्फ भारत का गुणगान करना है। भारत का गुणगान करना तो एक तरह से अपना ही गुणगान करना हुआ। तो भी क्या हर्ज है? गुणगान इसलिए करना है; क्योंकि उनको, उन पश्चिमी विद्वानों को, जो हमें सिखाने का गरूर लेकर इस देश में आए थे, उनको बताना है कि हमारे देश का जो नाम है, वह वही क्यों है। वे जो अहंकार पाले बैठे थे कि इस फूहड़ (उनके मुताबिक) देश के बाशिंदों को उन्होंने सिखाया है कि राष्ट्र क्या होता है, राष्ट्रीय एकता क्या होती है, उन्हें बताना है कि इस देश के पुराने, काफी पुराने साहित्य में पूरी शिद्दत से दर्ज है कि 'भारत' नामक राष्ट्र का मतलब क्या होता है और क्यों होता है? और उन तमाम इतिहासकारों को भी जिन्हें पश्चिमी विद्वानों द्वारा भारतीय इतिहास के आर-पार सिर्फ अंधेरा ही अंधेरा नजर आता है, यह बताना है कि अपने देश का नाम-रूप जानने के लिए उन्हें अपने देश के भीतर ही झांकना होता है। तेरा राम तेरे मन में है।

'महाभारत' का एक छोटा-सा संदर्भ छोड़ दें, तो पूरी जैन-परम्परा और वैष्णव-परम्परा में बार-बार दर्ज है कि समुद्र से लेकर हिमालय तक फैले इस देश का नाम प्रथम तीर्थंकर दार्शनिक राजा भगवान् ऋषभदेव के पुत्र भरत के नाम पर 'भारतवर्ष' पड़ा। **महाभारत (आदि पर्व 2-96)** का कहना है कि इस देश का नाम 'भारतवर्ष' उस भरत के नाम पर पड़ा जो दुष्यन्त और शकुन्तला का पुत्र कुरुवंशी राजा था। पर इसके अतिरिक्त जिस भी पुराण में भारतवर्ष का विवरण है, वहाँ इसे ऋषभ के पुत्र भरत के नाम पर ही बताया गया है। 'वायुपुराण' कहता है कि इससे पहले भारतवर्ष का नाम 'हिमवर्ष' था, जबकि 'भागवत पुराण' में इसका पुराना नाम 'अजनाभवर्ष' बताया गया है। हो सकता है कि दोनों हों और इसके अलावा भी कुछ नाम चलते और हटते रहे हों, तब तक जब तक कि 'भारतवर्ष' नाम पड़ा और क्रमशः सारे देश में स्वीकार्य होता चला गया। आप खुश हों या हाथ झाड़ने को तैयार हो जाएँ, पर आज उन पुराण-प्रसंगों को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शब्दश: पढ़ना ही होगा, जिनमें इस देश के नाम के बारे में एक ही बात बार-बार लिखी है। अपने देश के नाम का मामला है न? तो सही बात पता भी तो रहनी चाहिए।

'भागवत पुराण' कहता है कि (स्कन्ध-5, अध्याय-4) भगवान् ऋषभ को अपनी कर्मभूमि 'अजनाभवर्ष' में 100 पुत्र प्राप्त हुए, जिनमें से ज्येष्ठ पुत्र महायोगी 'भरत' को उन्होंने अपना राज्य दिया और उन्हीं के नाम से लोग इसे 'भारतवर्ष' कहने लगे—**येषां खलु महायोगी भरतो ज्येष्ठ: श्रेष्ठगुण आसीद्, येनेदं वर्षं भारतमिति व्यपदिशन्ति।** दो अध्याय बाद इसी बात को फिर से दोहराया गया है।

'विष्णु पुराण' (अंश 2, अध्याय 1) कहता है कि जब ऋषभदेव ने नग्न होकर वन प्रस्थान किया, तो अपने ज्येष्ठ-पुत्र भरत को उत्तराधिकार दिया जिससे इस देश का नाम 'भारतवर्ष' पड़ गया—**ऋषभाद् भरतो जज्ञे ज्येष्ठ: पुत्रशतस्य स:** (श्लोक 28), **अभिषिच्य सुतं वीरं भरतं पृथिवीपति:** (29), **नग्नो वीटां मुखे कृत्वा वीराध्वानं ततो गत:** (31), **ततश्च भारतं वर्षम् एतद् लोकेषु गीयते** (32)।

ठीक इसी बात को 47-21-24 में दूसरे शब्दों में दोहराया गया है— **सोऽभिचिन्त्याथ ऋषभो भरतं पुत्रवत्सल:। ज्ञानवैराग्यमाश्रित्य जित्वेन्द्रिय-महोरगान्। हिमाद्रेर्दक्षिणं वर्षं भरतस्य न्यवेदयत्। तस्मात्तु भारतं वर्षं तस्य नाम्ना विदुर्बुधा:।** यानी (संक्षेप में) इन्द्रियरूपी साँपों पर विजय पाकर ऋषभ ने हिमालय के दक्षिण में जो राज्य भरत को दिया, तो इस देश का नाम तब से 'भारतवर्ष' पड़ गया। इसी बात को प्रकारान्तर से 'वायु पुराण' और 'ब्रह्माण्ड पुराण' में भी कहा गया है।

अब बताइए कि जो विदेशी लोग, जो हमारे अपने सगे उनके मानसपुत्र किन्हीं आर्यों को कहीं बाहर से आया मानते हैं, फिर यहाँ आकर द्रविड़ों से उनकी लड़ाइयाँ बताते हैं, उन्हें और क्या बताएँ और क्यों बताएँ? क्यों न उन लोगों के लिए कोशिश करें, जो जानना चाहते हैं और जिनके इरादे नेक हैं।

पर सवाल यह कि ऋषभ-पुत्र भरत में ऐसी खास बात क्या थी उनके नाम पर इस देश का नाम 'भारतवर्ष' पड़ गया? भरत के विशिष्ट-चरित्र का वर्णन करने के लिए इस देश के पुराण-साहित्य में उनके तीन जन्मों का वर्णन है और प्रत्येक जन्म में दो बातें समानरूप से रहीं। एक, भरत को अपने पूर्वजन्म का पूरा ज्ञान रहा और दो, हर अगले जन्म में वे पूर्व की अपेक्षा ज्ञान और वैराग्य की ओर ज्यादा से ज्यादा बढ़ते चले गए। तीन जन्मोंवाली बात पढ़कर तार्किक दिमाग की इच्छा होती होगी कि ऐसी कल्पनाएँ भी भला क्यों गढ़नी पड़ीं? बेशक कुछ लोग कहना चाहेंगे कि कई बार तर्क का रास्ता ऐसे अतार्किक बीहड़ में से भी निकल आता है। पर इस संबंध में जैन-परम्परा तर्क के नजदीक ज्यादा नजर आती है, जहाँ उनको एक ही जन्म में परम दार्शनिक अवधूत के रूप में चित्रित किया गया है। भरत अपने पिता की ही तरह दार्शनिक राजा थे। बल्कि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उनसे भी इस कदम आगे निकल गये थे। दार्शनिक राजा भरत के बारे में जितनी बातें पुराणों में दर्ज है, वे जाहिर है कि हमें कहीं पहुँचाती नहीं। पर उनके नाम के साथ 'जड़' शब्द जुड़ा होने और उनके नाम पर इस देश का नाम पड़ जाने में जरूर कोई रिश्ता रहा है, जिसे हम भूल चुके हैं और जिसे और ज्यादा खँगालने की जरूरत है। आज चाहे हमारे पास वैसा जानने का कोई साधन नहीं है और न ही जैन-परम्परा में मिलनेवाला भरत का वर्णन इसमें हमारी कोई बड़ी सहायता करता है। पर राजा भरत ने खुद को भुलाकर, जड़ बनाने की हद तक भुलाकर देश और आत्मोत्थान के लिए कोई विलक्षण काम किया कि देश को ही उनका नाम मिल गया। चूँकि मौजूदा विवरण काफी नहीं, आश्वस्त नहीं करते, कहीं पहुँचाते भी नहीं, पर अगर जैन और भागवत —दोनों परम्पराएँ भरत के नाम पर इस देश को 'भारतवर्ष' कहती हैं, तो उसके पीछे की विलक्षणता की खोज करना विदेशी विद्वानों के वश का नहीं, देशी विद्वानों की तड़पन इसकी प्रेरणा बन सकती है। पर क्या कहीं न कहीं इसका संबंध इस बात से जुड़ा नजर नहीं आता कि यह देश उसी व्यक्तित्व को सिर आँखों पर बिठाती है, जो ऐश्वर्य की हद तक पहुँच कर भी जीवन को सांसारिक नहीं; बल्कि आध्यात्मिक साधना के लिए होम कर देता है?

पर जिस 'भारतवर्ष' के नामकरण के कारण को हम पूरी संतुष्टि देनेवाले तर्क की सीमा-रेखा तक नहीं पहुँचा पा रहे हैं, उस भारत का भव्य और भावुकता से सराबोर रंगबिरंगा-विवरण हमारे पुराण-साहित्य में मिल जाता है, जिसमें 'वन्दे मातरम्' और 'सारे जहां से अच्छा' गीतों जैसी अद्भुत ममता भरी पड़ी है। 'विष्णु पुराण' कहता है कि उसी देश का नाम 'भारतवर्ष' है, जो समुद्र के उत्तर और हिमालय के दक्षिण में है— **उत्तरं यत् समुद्रस्य हिमाद्रेः चैव दक्षिणम्। वर्षं तद् भारतं नाम भारती यत्र संततिः** (2, 3, 1,)। इसमें खास बात यह है कि इसमें जहाँ भारत-राष्ट्र का वर्णन है, वहाँ हम भारतीयों को 'भारती' कहकर पुकारा गया है। भारत के चारों हिस्सों में खड़े पर्वतों का विवरण इससे ज्यादा साफ क्या होगा— **"महेन्द्रो मलयो सह्यः शुक्तिमान् ऋक्ष-पर्वतः। विंध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वताः।** —*(विष्णु पुराण 2, 3, 3)*।

फिर अनेक नदियों के नाम हैं, पुराने भी और वे भी, जो आज तक चलते आ रहे हैं। भारत-शरीर के इस सपाट-वर्णन के बाद कैसे 'विष्णु पुराण' अपने पाठकों को हृदय और भावना के स्तर पर भारत से जोड़ता है, वह वास्तव में पढ़ने लायक और रोमांचकारी है। कवि कहता है कि हजारों जन्म पा लेने के बाद ही कोई मनुष्य पुण्यों का ढेर सारा संचय कर भारत में जन्म लेता है— **"अत्र जन्मसहस्राणां सहस्रैरपि संततम्। कदाचिद् लभते जन्तुर्मानुषं पुण्यसंचयात्।"** —*(विष्णु 2, 3)*। स्वर्ग में बैठे देवता भी गा रहे हैं, कि वे धन्य हैं जो भारत-भूमि के किसी भी हिस्से में जन्म पा जाते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं— "गायन्ति देवा: किल गीतकानि, धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे। स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते, भवन्ति भूय: पुरुषा: सुरत्वात्।" —*(वि.पु. 2, 3)*। क्या किसी राष्ट्रगान से कम भावुकता इन पद्यों में है? ठीक इसीतरह से सरल लय और बांध देनेवाली भावुकता से भरा इस देश का वर्णन 'भागवत पुराण' (स्कन्ध 5, अध्याय 14, श्लोक 21-28) के आठ श्लोकों में मिलता है, जिन्हें अगर हमारे संविधान-लेखकों ने पढ़ लिया होता, तो उन्हें राष्ट्रगान की खोज के लिए भटकना न पड़ता।

जाहिर है कि ऋषभपुत्र भरत के नाम पर जब इस देश का नाम 'भारतवर्ष' पड़ा होगा, तो धीरे-धीरे पूरे देश को यह नाम स्वीकार्य हो पाया होगा। एक सड़क या गली का नाम ही स्वीकार्य और याद होने में वर्षों ले लेता है, तो फिर एक देश का नाम तो सदियों की यात्रा पा करता हुआ स्वीकार्य हुआ होगा, वह भी तब जब संचार-साधन आज जैसे तो बिलकुल ही नहीं थे। पर लगता है कि 'महाभारत' तक आते-आते इस नाम को अखिल भारतीय स्वीकृति ही नहीं मिल गई थी, बल्कि इसके साथ भावनाओं का रिश्ता भी भारतीयों के मन में कहीं गहरे उतर चुका था। ऊपर कई तरह के पुराण-संदर्भ तो इसके प्रमाण हैं ही, खुद 'महाभारत' के 'भीष्म पर्व' के नौवें अध्याय के चार श्लोक अगर हम उद्धृत नहीं करेंगे, तो पाठकों से महान् अन्याय कर रहे होंगे। धृतराष्ट्र से संवाद करते हुए उनके मंत्री संजय, जिन्हें हम आजकल थोड़ा हल्के मूड में 'महाभारत का युद्ध-संवाददाता' कह दिया करते हैं, कहते हैं—

अत्र ते वर्णयिष्यामि वर्षं भारत भारतम्।
प्रियं इन्द्रस्य देवस्य मनो: वैवस्वतस्य च।।
पृथोश्च राजन् वैन्यस्य तथेक्ष्वाको: महात्मन:।
ययाते: अम्बरीषस्य मान्धातु: नहुषस्य च।।
सथैव मुचुकुन्दस्य शिवे: औशीनरस्य च।
ऋषभस्य तथैलस्य नृगस्य नृपतेस्तथा।।
अन्येषां च महाराज क्षत्रियाणां बलीयसाम्।
सर्वेषामेव राजेन्द्र प्रियं भारत भारतम्।।

अर्थात् हे महाराज धृतराष्ट्र ! अब मैं आपको बताऊँगा कि यह भारतदेश सभी राजाओं को बहुत ही प्रिय रहा है। इन्द्र इस देश के दीवाने थे, तो विवस्वान के पुत्र मनु इस देश से बहुत प्यार करते थे। ययाति हों या अम्बरीष, मान्धाता रहे हों या नहुष, मुचुकुन्द, शिवि, ऋषभ या महाराज नृग रहे हों, इन सभी राजाओं को तथा इनके अलावा जितने भी महान् और बलवान राजा इस देश में हुए, उन सबको भारतदेश बहुत प्रिय रहा है। —*(साभार उद्धृत, नवभारत टाइम्स, 29 मई 1994, पृष्ठ 3)*

❖❖

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भारतीय वास्तुकला के विकास में जैनधर्म का योगदान

—प्रो. कृष्णदत्त वाजपेयी

भारत में जैनधर्म के विकास की जानकारी के लिए प्राचीन जैन-मन्दिरों तथा मूर्तियों का ज्ञान बहुत जरूरी है। जैनधर्म के प्रसार के लिए यह आवश्यक था कि देश के विभिन्न-भागों में मन्दिरों तथा मूर्तियों का निर्माण किया जाता। उनके माध्यम से जैनधर्म को जनसाधारण में फैलाने में बड़ी सहायता मिली। भारतीय ललित-कला के इतिहास पर जैन-स्मारकों तथा कलाकृतियों से बड़ा प्रकाश पड़ा है।

जैनधर्म के अन्तिम तीर्थंकर महावीर स्वामी थे। उनकी तथा उनके पहले के अनेक तीर्थंकरों की जन्मभूमि तथा कार्यक्षेत्र होने का गौरव 'बिहार' प्रदेश को प्राप्त हुआ। वैदिक-धर्म की मान्यताओं के प्रति अनास्था का बीजारोपण भारत में मुख्यत: बिहार में हुआ। उस क्षेत्र में जैन, बौद्ध, आजीवक आदि अनेक संप्रदायों का उदय तथा विकास हुआ। पाटलिपुत्र, राजगृह तथा उसके आसपास का भूभाग इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है। धीरे-धीरे जैन तथा बौद्ध विचारधाराओं ने सुसंगठित धर्मों का रूप प्राप्त कर लिया और उनका व्यापक-प्रसार बिहार के बाहर भी हुआ।

भारतीय स्थापत्य का ऐतिहासिक विवेचन करने से ज्ञात होता है कि जैन-देवालयों का निर्माण मौर्य-शासनकाल में होने लगा था। 'बिहार' में 'गया' के समीप 'बराबर' नामक पर्वत-गुफाओं में कई शिलालेख मिले हैं। उनसे ज्ञात हुआ है कि मौर्य-सम्राट् अशोक ने आजीविक-सम्प्रदाय के सन्यासियों के लिए शैलगृहों का निर्माण कराया। उसके वंशज 'दशरथ' नामक शासक ने भी इस कार्य को आगे बढ़ाया। आजीवक-सम्प्रदाय के प्रारम्भकर्ता आचार्य, तीर्थंकर महावीर के समकालीन थे। 'बराबर' पहाड़ी से कुछ दूर 'नागार्जुनी' नामक पहाड़ी है, वहाँ भी मौर्यकाल में साधुओं के निवास के लिए कई शैलगृह बनाये गये। भारतीय साहित्य में पर्णशालाओं के उल्लेख मिलते हैं, उन्हीं के ढंग पर इन शैल-गृहों का निर्माण किया गया। जैन-साधुओं के लिए शैलगृह बनाने के उदाहरण तमिलनाडु में भी मिले हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ईसवी पूर्व दूसरी और पहली शती में उड़ीसा तथा पश्चिमी भारत में पर्वतों को काटकर देवालय बनाने की परम्परा विकसित हुई। उड़ीसा में भुवनेश्वर के समीप कई बड़ी गुफाएँ पत्थर की चट्टानों को काटकर बनाई गईं। यहाँ 'खण्डगिरि' तथा 'उदयगिरि' नामक पहाड़ियों पर स्थित जैन गुफाएँ बहुत प्रसिद्ध है। इनमें एक प्रसिद्ध गुफा का नाम 'हाथीगुफा' है। उसमें कलिंग के जैन-शासक खारवेल का एक शिलालेख खुदा हुआ है। लेख से ज्ञात हुआ है कि ईसापूर्व चौथी शती में मगध के राजा महापद्मनन्द तीर्थंकर की एक मूर्ति कलिंग से अपनी राजधानी पाटलिपुत्र उठा ले गये थे। खारवेल ने ईसवी पूर्व दूसरी शती के मध्य में उस प्रतिमा को मगध से अपने राज्य में लौटाकर पुन: प्रतिष्ठापित किया। इस शिलालेख से पता चलता है कि तीर्थंकर-मूर्तियों का निर्माण नंदराज महापद्मनन्द के पहले प्रारम्भ हो चुका था।

उत्तर-भारत में जैन-कला के जितने प्राचीन केन्द्र थे, उनमें मथुरा का स्थान महत्त्वपूर्ण है। मौर्यकाल से लेकर आगामी लगभग सोलह शताब्दियों से ऊपर के दीर्घकाल में मथुरा में जैनधर्म का विकास होता रहा। वहाँ के चित्तीदार लाल बलुए पत्थर की बनी हुई कई हजार जैन कलाकृतियाँ अब मथुरा और उसके आसपास के जिलों से प्राप्त हो चुकी हैं। इनमें तीर्थंकर प्रतिमाओं के अतिरिक्त चौकोर आयागपट, वेदिका-स्तम्भ, सूची, तोरण तथा द्वार-स्तम्भ आदि हैं। मथुरा के जैन आयागपट (पूजा के शिलाखण्ड) विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। उन पर प्राय: बीच में तीर्थंकर मूर्ति तथा उसके चारों ओर विविध प्रकार के मनोहर अलंकरण मिलते हैं। स्वस्तिक, नन्द्यावर्त, धर्ममानक्य, श्रीवत्स, भद्रासन, दर्पण, कलश और मीनयुगल —इन अष्टमंगल-द्रव्यों का आयागपट्टों पर सुन्दरता के साथ चित्रण किया गया है। एक आयागपट्ट पर आठ दिक्ककुमारियाँ एक-दूसरे का हाथ पकड़े हुए आकर्षक-ढंग से मण्डल-नृत्य में संलग्न दिखाई गई हैं। 'मण्डल' या 'चक्रवाल' अभिनय का उल्लेख 'रायपसेणियसुत्त' नामक जैन-ग्रंथ में भी मिलता है। एक दूसरे आयागपट्ट पर तोरणद्वार तथा वेदिका का अत्यन्त सुन्दर अंकन है। वास्तव में ये आयागपट्ट प्राचीन जैनकला के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। इनमें से अधिकांश अभिलिखित हैं, उन पर ब्राह्मी-लिपि में लगभग ई.पू. एक सौ से लेकर ईसवी प्रथम शती के मध्य तक के लेख हैं।

पश्चिमी भारत, मध्य भारत तथा दक्षिण में पर्वतों को काटकर जैन-देवालय बनाने की परम्परा दीर्घ-काल तक मिलती है। 'विदिशा' के समीप 'उदयगिरि' की पहाड़ी में दो जैन-गुफाएँ हैं। संख्या 'एक' की गुफा में गुप्तकालीन जैन-मन्दिर के अवशेष उपलब्ध हैं। उदयगिरि की संख्या 20 वाली गुफा भी जैन-मन्दिर है। उसमें गुप्तसम्राट् कुमारगुप्त प्रथम के समय में निर्मित कलापूर्ण तीर्थंकर-प्रतिमा मिली है।

गुजरात, महाराष्ट्र तथा कर्नाटक में पर्वतों को काटकर बनाये गये अनेक मन्दिर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विद्यमान हैं। बादामी के चालुक्य-राजवंश तथा मान्यखेट के राष्ट्रकूट-राजवंश के शासनकाल में शिलालेखों को काटकर मन्दिर-स्थापत्य बनाने की परम्परा बहुत विकसित हुई। ईसवी 550 और 880 के मध्य में कर्नाटक में बादामी, पट्टदकल तथा ऐहोले में अनेक जैन-मन्दिरों का निर्माण हुआ। इनमें से कई मन्दिर शिलाओं को काटकर बनाये गये। शेष समतल-भूमि पर पत्थरों द्वारा बनाये गये। भारतीय स्थापत्य-कला के विकास के अध्ययन-हेतु कर्नाटक के इन मन्दिरों का विशेष-महत्त्व है। उत्तर भारत में 'नागर शैली' के मन्दिर बनाये जाते थे, जिनका मुख्य-लक्षण ऊँचा शिखर था। चालुक्यों के समय में कर्नाटक के अनेक मन्दिर 'बेसर शैली' के बनाये गये। इस शैली की विशेषता यह है कि उसमें उत्तर-भारत की शिखर-प्रणाली तथा दक्षिण की विमान-शैली का सम्मिश्रण है।

दक्षिण-भारत के मन्दिर-वास्तु 'द्रविड़-शैली' के नाम से प्रसिद्ध हैं। चालुक्यों के समय में कर्नाटक में निर्मित अनेक मन्दिरों में द्रविड़-स्थापत्य का रूप मिलता है। 'बादामी पर्वत' को काटकर बनाया गया एक विशाल जैन-मन्दिर उल्लेखनीय है। इस मन्दिर में विभिन्न-अलंकरणों को तथा जैन देवी-देवताओं की प्रतिमाओं को प्रभावपूर्ण ढंग से प्रदर्शित किया गया है। बादामी तथा पट्टदकल के अनेक जैन-मन्दिर अठपहल-शीर्षवाले हैं। द्रविड़-स्थापत्य की यह एक विशेषता है। कर्णाटक के कुछ मन्दिरों में नागर-शैली वाले उच्च-शिखर हैं। ऐहोले में एक मन्दिर में भारत की तीनों मन्दिर- शैलियों का समन्वय दृष्टिगोचर है।

राष्ट्रकूटों के शासनकाल में 'ऐलोरा' का प्रख्यात शिवमन्दिर एक विशाल-पर्वत को काटकर बनाया गया है। इस मन्दिर का अलंकरण तथा मूर्तिविधान अत्यन्त-कलापूर्ण है। इस मन्दिर के अनुकरण पर ऐलोरा में कई जैन-मन्दिरों का निर्माण किया गया। वहाँ 'इंद्रसभा' नामक जैन-प्रासाद विशेषरूप से उल्लेखनीय है। इसका निर्माण लगभग 800 ईसवी में हुआ। चट्टान को काटकर बनाए गए दरवाजे से इस प्रासाद में प्रवेश करते हैं। प्रासाद का प्रांगण 50 फुट वर्गाकार है। प्रांगण के मध्य में एकाश्म या इकहरे पत्थर का बना हुआ द्रविड़-शैली का मन्दिर है। पास में ऊँचा 'ध्वज-स्तम्भ' है। जैन-मन्दिर में ध्वज-स्तम्भ बनाने की परम्परा दीर्घकाल तक मिलती है। उत्तर तथा दक्षिण-भारत के मन्दिरों में इसप्रकार के ध्वज-स्तम्भ दर्शनीय हैं। कतिपय ध्वज-स्तम्भों को चाँदी या सोने से मढ़ दिया जाता था।

जैन-मन्दिर-स्थापत्य का दूसरा रूप 'भूमिज-मन्दिरों' में मिलता है। इन मन्दिरों का निर्माण प्राय: समतल-भूमि पर पत्थर और ईंटों द्वारा किया जाता था। उत्तरप्रदेश, राजस्थान, गुजरात, बंगाल और मध्यप्रदेश में समतल भूमि पर बनाये गये जैन-मन्दिरों की संख्या बहुत बड़ी है। कभी-कभी ये मन्दिर जैन-स्तूपों के साथ बनाये जाते थे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैन-स्तूपों के सम्बन्ध में प्रचुर साहित्यिक तथा अभिलेखीय प्रमाण उपलब्ध हैं। उनसे ज्ञात होता है कि अनेक प्राचीन-स्थलों पर उनका निर्माण हुआ। मथुरा, कौशाम्बी आदि कई स्थानों में प्राचीन जैन-स्तूपों के भी अवशेष मिले हैं। उनसे यह बात स्पष्ट है कि इन स्तूपों का निर्माण ईसवी पूर्व दूसरी शती से व्यवस्थितरूप में होने लगा था। प्रारम्भिक-स्तूप अर्धवृत्ताकार होते थे। उनके चारों ओर पत्थर का बाड़ा बनाया जाता था। उसे 'वेदिका' कहते थे। वेदिका के स्तम्भों पर आकर्षण मुद्राओं में स्त्रियों की मूर्तियों को विशेषरूप से अंकित करना प्रशस्त माना जाता था। गुप्त-काल से जैन-स्तूपों का आकार लम्बोतरा होता गया। बौद्ध-स्तूपों की तरह जैन-स्तूप भी परवर्तीकाल में अधिक ऊँचे आकार के बनाये जाने लगे।

मध्यकाल में जैन-मन्दिरों का निर्माण व्यापकरूप में होने लगा। भारत के सभी भागों में विविध प्रतिमाओं से अलंकृत जैन-मन्दिरों का निर्माण हुआ। इस कार्य में विभिन्न राजवंशों के अतिरिक्त व्यापारी-वर्ग तथा जनसाधारण ने भी प्रभूत-योग दिया।

चन्देलों के समय में खजुराहो में निर्मित जैन-मन्दिर प्रसिद्ध हैं। इन मन्दिरों के बहिर्भाग एक विशिष्ट शैली में उकेरे गये हैं। मन्दिरों के बाहरी भागों पर समान्तर अलंकरण-पट्टिकाएँ उत्खचित हैं। उनमें देवी-देवताओं तथा मानव और प्रकृति-जगत् को अत्यन्त-सजीवता के साथ आलेखित किया गया है। खजुराहो के जैन-मन्दिरों में पार्श्वनाथ का मन्दिर अत्यधिक विशाल है। उसकी ऊँचाई 68 फुट है। मन्दिर के भीतर का भाग महामण्डप, अन्तराल तथा गर्भगृह—इन तीन मुख्य भागों में विभक्त है। उनके चारों ओर प्रदक्षिणा-मार्ग है। इस मन्दिर के प्रवेशद्वार पर गरुड पर दसभुजी जैन-देवी आरूढ़ हैं। गर्भगृह की द्वारशाखा पर पद्मासन तथा खड्गासन में तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ उकेरी गयी हैं। खजुराहो के इन मन्दिरों में विविध आकर्षक-मुद्राओं में सुर-सुन्दरियों या अप्सराओं की भी मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। इन मूर्तियों में देवांगनाओं के अंग-प्रत्यंगों के चारु-विन्यास तथा उनकी भावभंगिमाएं विशेषरूप से दर्शनीय हैं। खजुराहो का दूसरा मुख्य जैन-मन्दिर आदिनाथ का है। इसका स्थापत्य पार्श्वनाथ-मन्दिर के समान है।

विदिशा जिले के 'ग्यारसपुर' नामक स्थान में 'मालादेवी मन्दिर' है। उसके बहिर्भाग की सज्जा तथा गर्भगृह की विशाल प्रतिमाएँ कलात्मक-अभिरुचि की द्योतक हैं। मध्य भारत में मध्यकाल में ग्वालियर, देवगढ़, चन्देरी, अजयगढ़, अहार आदि स्थानों में स्थापत्य तथा मूर्तिकला का प्रचुर-विकास हुआ।

राजस्थान में ओसिया, राणकपुर, सादरी, आबू पर्वत आदि अनेक स्थानों में जैन स्थापत्य के अनेक उत्तम-उदाहरण विद्यमान हैं। उनमें भव्यता के साथ कलात्मक अभिरुचि का सामंजस्य है। आबू पर्वत के जैन-स्मारकों मे संगमर्मर का अत्यन्त बारीक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कटाव द्रष्टव्य है। उत्तर-मध्यकालीन भारतीय स्थापत्य का रोचक-स्वरूप यहाँ देखने को मिलता है।

गुजरात, कर्नाटक तथा आंध्र प्रदेश के अनेक भागों में मध्यकालीन जैन-स्थापत्य का विकास द्रष्टव्य है। दक्षिण में विजयनगर राज्य के समय तक स्थापत्य और मूर्तिकला का विकास साथ-साथ होता रहा।

जैन-स्थापत्य-कला का प्राचुर्य 'देवालय-नगरों' में देखने को मिलता है। ऐसे स्थलों पर सैकड़ों मन्दिर पास-पास बने हुए हैं।

गिरनार, शत्रुंजय, आबू, पपौरा, अहार, थूबोन, कुण्डलपुर, सोनागिरि आदि अनेक स्थलों पर जैन मन्दिर-नगर विद्यमान हैं। ऐसे मन्दिर-नगरों के लिए पर्वत-शृंखलाएँ विशेषरूप से चुनी गयीं।

आधुनिक युग में जैन स्थापत्य की परम्परा जारी मिलती है। वास्तु के अनेक प्राचीन लक्षणों को आधुनिक कला में भी हम रूपायित पाते हैं। भारतीय संस्कृति तथा ललितकलाओं के इतिहास के अध्ययन में जैन-स्थापत्य-कला का निस्संदेह महत्त्वपूर्ण-स्थान है।

—('भगवान् महावीर स्मृति ग्रन्थ', सम्पादक—डॉ. ज्योति प्रसाद जैन, प्रकाशक—श्री महावीर निर्वाण समिति, उत्तर प्रदेश)

❖❖

धर्म क्या है?

"पुच्छियउ धम्मु जइवज्जरइ, जो सयलहं जीवह दय करइ।
जो अलियवयं पणु परिहरइ, जो सच्च सउच्चे रइ करइ।।
वज्जइ अदत्तु णियपियरवणु, जो ण घिवइ परकलते णयर्णु।
जो परहणु तिणसमाणु गणइ, जो गुणवंतउ भत्तिए थुणइ।।
एयइं धम्महो अंगइं जो पालइ अविहगइं।
सो जि धम्मु सिरितुंगइ, अण्णुकि धम्म हो सिंगइ।।"

—(महापुराण)

अर्थ :— धर्म का स्वरूप क्या है? जो सम्पूर्ण जीवों पर दया करे, मिथ्यावचन का परित्याग करे, जो सत्य पर रति करे, अदत्त का ग्रहण करे, अपनी स्त्री से सन्तोष रखते हुए परकलत्र पर दृष्टिपात भी न करे, परधन को तृणवत् गिने तथा गुणवान् का समादर करे। धर्म के ये अंग हैं। जो इनका यथावत् पालन करते हैं, वे धर्मशिरोमणि हैं, अथवा वह धर्म सर्वोत्तम है। इनसे भिन्न धर्म के क्या शृंग (सींग) होते हैं? अर्थात् धर्म का स्वरूप सहज-सुगम है, उसमें विचित्रताएँ खोजने की क्या आवश्यकता है? ◆◆

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्तरमध्यकालीन इतिहास, साहित्य एवं कला का संगम तीर्थ : गोपाचल

—प्रो. (डॉ.) राजाराम जैन

गोपाचल (वर्तमान ग्वालियर) जैन इतिहास, संस्कृति एवं कला का प्रधान-केन्द्र रहा है। उसका सुदूर अतीत तो स्वर्णिम रहा ही, मध्यकाल एवं विशेषत: 15वीं-16वीं सदी का काल ऐतिहासिक महत्त्व का रहा। इस युग में जहाँ एक ओर अनेक विशाल एवं उत्तुंग-जिनालयों, जैन-विहारों, अगणित जैन-मूर्तियों, तथा अनेक स्वाध्याय-शालाओं का निर्माण कराया गया, तो दूसरी ओर सैकड़ों मौलिक जैनग्रन्थों का प्रणयन किया गया और अनेक प्राचीन जीर्ण-शीर्ण, नष्ट-भ्रष्ट हस्तलिखित गौरव-ग्रन्थों का पुनर्लेखन, पुनरुद्धार, प्रतिलिपि-कार्य तथा उनके संरक्षण का केन्द्र भी बना रहा।

भारत के प्रधान-नगरों में गोपाचल की अपनी विशेष ऐतिहासिक पहिचान होने पर भी वह किन्हीं अदृश्य कारणों से धूमिल होती गई। आधुनिक इतिहासकारों ने भी गोपाचल नगर तथा उसके मध्यकालीन शासकों, महान् कलाकारों, साहित्यकारों तथा गोपाचल-राज्य को सुरक्षा, समृद्धि एवं ख्याति प्रदान करानेवाले श्रेष्ठियों को विस्मृत कर दिया और इसप्रकार भारतीय इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण उज्ज्वल-अध्याय अन्धकाराच्छन्न ही रह गया।

किन्तु अहर्निश स्मरणीय है वह महाकवि रइधू, जिसने गोपाचल की धरती पर बैठकर यह अनुभव किया कि मौसमी दुष्प्रभावों, विदेशी आक्रमणों तथा अराजकता की आँधियों में हमारी वन्दनीय जिनवाणी के अनेक गौरव-ग्रन्थ नष्ट-भ्रष्ट, लुप्ट-विलुप्त हो चुके हैं तथा हमारी आस्था एवं विश्वास की अनेक पवित्र धरोहरें—मन्दिर एवं मूर्तियाँ भी ध्वस्त एवं क्षतिग्रस्त हो चुकी हैं। इनकी क्षतिपूर्ति कैसे हो सकेगी? उसकी अन्तरात्मा ने उसे जो उत्तर दिया और उसके प्रयत्नों से उसी के जीवनकाल में जैसे-जैसे संरचनात्मक कार्य गोपाचल में सम्पन्न किए गए, उन्हीं की संक्षिप्त-चर्चा ऊपर की गई है।

महाकवि रइधू (वि.सं. 1440-1536) ऐसे महाकवि हैं, जिन्होंने अपने जीवनकाल में सन्धिकालीन अपभ्रंश तथा प्राकृत एवं समकालीन हिन्दी में 30 ग्रन्थों से भी अधिक की रचना की, किन्तु उनमें से अद्यावधि 23 ग्रन्थ ही उपलब्ध हो सके हैं। इन ग्रन्थों की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनेक विशेषताएँ हैं, किन्तु उनमें भी एक विशेष ऐतिहासिक महत्त्व की बात यह हैं कि उनके प्रायः प्रत्येक ग्रन्थ के आदि एवं अन्त में लम्बी-लम्बी प्रशस्तियाँ प्राप्त होती हैं; जिनमें पूर्ववर्त्ती एवं समकालीन साहित्य एवं साहित्यकारों, राजाओं, कलाकारों एवं नगरश्रेष्ठियों के कार्यकलापों तथा समकालीन ऐतिहासिक घटनाओं के उल्लेख एवं सांस्कृतिक और सामाजिक गतिविधियों के क्रमबद्ध-विवरण उपलब्ध होते हैं। गोपाचल-दुर्ग में जो अगणित जैन-मूर्तियाँ उपलब्ध हैं, किसकी प्रेरणा से उनका निर्माण कराया गया? उनका प्रतिष्ठाचार्य कौन था? उनके निर्माता कौन थे? समकालीन राज्यों ने उनके निर्माण एवं प्रतिष्ठा-कार्यों में क्या सहायता प्रदान की? इन सभी तथ्यों का प्रामाणिक एवं रोचक वर्णन इन प्रशस्तियों में उपलब्ध है।

पूर्ववर्त्ती एवं समकालीन भट्टारकों की क्रमबद्ध-नामावली एवं उनके कार्य-कलापों की एक लंबी-शृंखला भी उनमें उपलब्ध है। ये सभी वर्णन विश्वसनीय एवं प्रामाणिक इसीलिए हैं, क्योंकि समकालीन तोमरवंशी राजा स्वयं महाकवि रइधू के परम-भक्त थे तथा प्रायः सभी नगरश्रेष्ठिगण, एक ओर महाकवि के परमभक्त एवं अनुयायी थे, तो दूसरी ओर, वे राजाओं की मन्त्री-परिषद के विश्वस्त एवं प्रतिष्ठित मन्त्री, सामन्त तथा आर्थिक सहायक भी। राजा डूँगरसिंह की विशेष-प्रार्थना पर महाकवि रइधू स्वयं भी गोपाचल-दुर्ग में निवास करते थे। अतः प्रत्यक्षदृष्टा होने के कारण वे उस समय की प्रायः समस्त घटनाओं एवं परिस्थितियों से पूर्णतया परिचित रहे होंगे।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि यदि गोपाचल-राज्य का उत्तरमध्यकालीन प्रामाणिक इतिहास तैयार करना हो, वहाँ के नरेशों, भट्टारकों एवं जैनसमाज का इतिहास तैयार करना हो, गोपाचल-दुर्ग की जैन-मूर्त्तियों का इतिहास तैयार करना हो, वहाँ के अग्रवालों, खण्डेलवालों, पद्मावती-पोरवालों जैसवालों परवारों एवं गोलालारों की वंशावलियों तथा उनके कार्यकलापों की जानकारी प्राप्त करना हो; तो रइधू-साहित्य का अध्ययन करना नितान्त आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है।

महाकवि रइधू ने जिस गौरवशाली-साहित्य का निर्माण किया, और अपने असाधारण पाण्डित्य, इतिहास-संस्कृति एवं समकालीन लोक-जीवन का तलस्पर्शी ज्ञान तथा समाज एवं राष्ट्र को साहित्य, संगीत और कला के प्रति जागरुक बनाने की क्षमता का परिचय दिया, स्थानाभाव के कारण उस पर विस्तारपूर्वक यहाँ विचार करना संभव नहीं; किन्तु यहाँ एक ऐसा उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है, जिससे आभास मिलेगा कि गोपाचल का एक प्रतिष्ठित महामन्त्री कवि रइधू का कितना बड़ा भक्त था तथा रइधू के सान्निध्य से वह कितना बड़ा स्वाध्याय एवं कलाप्रेमी बन गया एवं गोपाचल को महनीय तीर्थक्षेत्र बनाने में उसका कितना महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। इससे महाकवि के प्रभावशाली व्यक्तित्व पर भी प्रकाश पड़ता है। तोमरवंशी राजा डूँगरसिंह (वि.सं. 1481-1510) का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक महामन्त्री था कमलसिंह संघवी। वह जिनवाणी-भक्त स्वाध्याय-प्रेमी था। अत: महाकवि रइधू से देखिए, वह कितना भावविह्वल होकर विनम्र प्रार्थना करता है। वह कहता है :—

"हे कविवर ! शयनासन, हाथी, घोड़े, ध्वजा, छत्र, चमर, सुन्दर-सुन्दर रानियाँ, रथ, सेना, सोना, धन-धान्य, भवन, सम्पत्ति, कोष, नगर, देश, ग्राम, बन्धु-बान्धव, सुन्दर-सन्तान, पुत्र-भाई आदि सभी मुझे उपलब्ध हैं। सौभाग्य से किसी प्रकार की भौतिक-सामग्री की मुझे कमी नहीं है; किन्तु इतना सब होने पर भी मुझे एक चीज का अभाव सदैव खटकता रहता है और वह यह कि मेरे पास काव्यरूपी एक भी सुन्दर-मणि नहीं है। इसके बिना मेरा सारा ऐश्वर्य फीका-फीका लगता है। हे काव्यरूपी रत्नों के रत्नाकर ! तुम तो मेरे स्नेही बालमित्र हो, तुम्हीं हमारे सच्चे पुण्य-सहायक हो। मेरे मन की इच्छा पूर्ण करनेवाले हो। यद्यपि यहाँ पर बहुत से विद्वत्जन रहते हैं, किन्तु मुझे आप जैसा कोई भी अन्य सुकवि नहीं दिखता। अत: हे कविश्रेष्ठ ! मैं अपने हृदय की गाँठ खोलकर सच-सच अपने हृदय की बात आपसे कहता हूँ कि आप एक काव्य की रचना करके मुझ पर अपनी महती कृपा कीजिए।"

महाकवि रइधू ने कमलसिंह की प्रार्थना स्वीकृत करते हुए कहा—"हे भाई कमलसिंह ! तुम अपनी बुद्धि को स्थिर करो, तुमने जो विचार प्रकट किये हैं, वे तुम्हारे ही अनुरूप हैं। अब चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं, प्रसन्नचित्त बनो। मैं तुम्हारी इच्छानुसार ही तुम्हारे लिए काव्यरचना कर दूँगा। जन्म-जन्मान्तर में तुम इसीप्रकार स्वर्ण, धन-धान्य, रत्नों एवं हीरा-माणिक्यों से समृद्ध बने रहो तथा दुर्लभता से प्राप्त इस धर्म एवं मानव-जीवन में हितकारी उच्च-कार्यों को भी सदा करते रहो।"

आनन्द-विभोर होकर, गोपाचल-दुर्ग में **गोम्मटेश्वर** (श्रवणबेल्गोला, कर्नाटक) के समान आदिनाथ की विशाल खड्गासन-मूर्ति के निर्माण कराने की भावना लेकर वह (मन्त्री कमलसिंह) राजा डूँगरसिंह के राजदरबार में पहुँचता है और शिष्टाचारपूर्वक विनम्र प्रार्थना करता है :—

"हे राजन् ! मैंने कुछ विशेष-धर्मकार्य करने का विचार किया है, किन्तु उसे कर नहीं पा रहा हूँ; अत: प्रतिदिन मैं यही सोचता रहता हूँ कि अब वह आपकी कृपापूर्ण सहायता एवं आदेश से ही सम्पूर्ण करूँ; क्योंकि आपका यश एवं कीर्ति अखण्ड एवं अनन्त है। मैं तो इस पृथ्वी पर एक दरिद्र एवं असमर्थ के समान हूँ। इस मनुष्य-पर्याय में मैं कर ही क्या सका हूँ।"

राजा डूँगरसिंह का पुत्र राजकुमार कीर्तिसिंह भी समीप में बैठा था। वह भी कमलसिंह के विचार सुनकर पुलकित हो उठा। डूँगरसिंह, कमलसिंह को जो आश्वासन भरा उत्तर देता है, वह निश्चय ही भारतीय इतिहास का एक स्वर्णिम-सन्दर्भ है। उससे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

डूँगरसिंह के इतिहास-प्रेम के साथ-साथ उसकी धर्म-निरपेक्षता, समरसता, कलाप्रियता तथा अपने राजकर्मियों की भावनाओं के प्रति अनन्य स्नेह एवं ममता की झाँकी स्पष्ट दिखाई देती है। वह कहता है :—

"हे सज्जनोत्तम ! जो भी पुण्यकार्य तुम्हें रुचिकर लगे, उसे अवश्य ही पूरा करो। हे महाजन ! यदि धर्म-सहायक और भी कोई कार्य हों, तो उन्हें भी पूरा करो। अपने मन में किसी भी प्रकार की शंका मत करो, धर्म के निमित्त तुम संतुष्ट रहो। जिसप्रकार राजा वीसलदेव के राज्य में सौराष्ट्र (सोरट्ठदेश) में धर्म-साधना निर्विघ्नरूप से प्रतिष्ठित थी, वस्तुपाल-तेजपाल ने हाथी-दाँतों से प्रवर तीर्थराज का निर्माण कराया था, जिसप्रकार पेरोजसाहि (फीरोजशाह) की महान् कृपा से योगिनीपुर (दिल्ली) में निवास करते हुए सारंग साहू ने अत्यन्त अनुरागपूर्वक धर्मयात्रा करके ख्याति अर्जित की थी, उसीप्रकार हे गुणाकर ! धर्मकायों के लिए मुझसे पर्याप्त-द्रव्य ले लो, जो भी कार्य करना हो, उसे निश्चय ही पूरा कर लो। यदि द्रव्य में कुछ कमी आ जाए, तो मैं उसे भी अपनी ओर से पूर्ण कर दूँगा। जो-जो भी माँगोगे, वही-वही (मुँह-माँगा) दूँगा।" राजा ने बार-बार आश्वासन देते हुए कमलसिंह को पान का बीड़ा देकर सम्मानित किया। राजा का आश्वासन एवं सम्मान प्राप्त कर कमलसिंह अत्यन्त गद्‌गद् हो उठा तथा वह राजा से इतना ही कह सका कि "हे स्वामिन् ! आज आपका यह दास धन्य हो गया।"

रइधू-साहित्य का अध्ययन करने से स्पष्ट विदित होता है कि उन्हें गोपाचल की भूमि अत्यन्त सुखद एवं शांत लगती थी। यही कारण है कि उनके विशाल-साहित्य का बहुभाग वहीं बैठकर लिखा गया। अपनी प्रशस्तियों में कवि ने स्थान-स्थान पर गोपाचल की प्रशंसा करते हुए उसे 'एक व्यक्ति के समान ही', 'पण्डितश्रेष्ठ', 'श्रेष्ठतम नगरों का महागुरु', 'स्वर्ग का गुरु', 'कुबेर-नगरी', 'इन्द्रपुरी', 'महापण्डित', 'गुरुणां गुरु' कहकर उसके प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त की है। उसके साहित्य, संगीत एवं कला-वैभव से एक फारसी कवि-फकीरुल्ला भी इतना प्रभावित हुआ था कि उसने गोपाचल को भारत का 'शीराज' (ईरान का साहित्य एवं कला का तीर्थ एवं अत्यन्त सुन्दर एवं समृद्ध नगर) कहा था। रइधू ने उस भूमि को सम्भवत: तीर्थभूमि बनाने का दृढ़ निश्चय कर लिया था, ऐसा उसकी प्रशस्तियों से विदित होता है। रइधू के 'सम्मत्तगुणणिहाणकव्व' से ज्ञात होता है कि रइधू कवि होने के साथ-साथ प्रतिष्ठाचार्य पण्डित भी थे। गोपाचल की विशाल आदिनाथ की मूर्ति के लेख से भी यह स्पष्ट है कि उसकी प्रतिष्ठा उन्हीं के द्वारा सम्पन्न की गई थी तथा प्रतिष्ठा के समय वहाँ एक विशाल प्रतिष्ठा-समारोह का आयोजन भी कराया गया था।

गोपाचल-दुर्ग में बहुसंख्यक जैनमूर्तियों का क्रमश: निर्माण कराया गया। रइधू के अनुसार उन्हें गिनने में इन्द्र भी असमर्थ था। महाकवि रइधू ने अपनी प्रशस्तियों में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिनमूर्ति-निर्माताओं का श्रद्धापूर्वक स्मरण किया है, इनमें से संघवी कमलसिंह, खेल्हा ब्रह्मचारी, असपति साहू, संघपति नेमदास तथा सहदेव संघपति के नाम प्रमुख हैं।

रइधू ने संघवी कमलसिंह को 'गोपाचल का तीर्थ-निर्माता' कहा है, जो उपयुक्त ही है। गोपाचल-दुर्ग की लगभग 58 फीट से भी ऊँची आदिनाथ की मूर्ति (सम्राट् बाबर ने उसकी ऊँचाई देखकर महान् आश्चर्य व्यक्त किया था तथा भ्रमवश उसे 40 फीट ऊँची बतलाया था) का निर्माता यही कमलसिंह संघवी था तथा उसकी प्रतिष्ठा का कार्य रइधू ने ही सम्पन्न कराया था। आंधी, पानी की बौछार एवं ऋतुओं के विभिन्न प्रभावों तथा अन्य अज्ञातकारणों से वह मूर्तिलेख कुछ अस्पष्ट हो गया है। अत: प्रयास करने पर भी वह कुछ भ्रमात्मक रूप से पढ़ा गया है, जो निम्न प्रकार है :—

"श्री आदिनाथाय नम.।। संवत् 1497 वर्ष वैशाख. . . . . . 7 शुक्रे,
पुनर्वसु नक्षत्र की गोपाचलदुर्ग महाराजाधिराज राजा श्री डूंग. . .
सवर्त्तमानों श्री कांचीसंघे मायूरान्वयो पुष्करगणभट्टारक
श्री गणकीर्तिदिव तत्पदे यत्य: कीर्तिदिवा प्रतिष्ठाचार्य श्री
पंडितरधू तेपं। आमाये अग्रोतवंशे मोद्गलगोत्रा सा धुरात्मा
तस्य पुत्र साधु भोपा तस्य भार्या नान्ही। पुत्र प्रथम साधु क्षेमसी
द्वितीय साधु महाराजा तृतीय असरात चतुर्थ धनपाल पंचम साधु पालका।
साधु क्षेमसी। भार्या नोरादेवी पुत्र-ज्येष्ठ पुत्र भधायिपति कौल
भार्या च ज्येष्ठ स्त्री सरसुती मल्लिदास द्वितीय भार्या
साध्वीसरा पुत्र चन्द्रपाल। क्षेमसी पुत्र द्वितीय साधु श्री भोजराजा
भार्या देवस्य पुत्र पूर्णपाल। ऐतषां मध्ये श्री।। त्यादिजिनसंघाधिपति काला सदा प्रणमति।"

रइधू ने अपनी एक प्रशस्ति में उक्त आदिनाथ की मूर्ति के निर्माण की चर्चा इसप्रकार की है :—

"आदीश्वरादि: प्रतिमा विशुद्ध: संकारयित्वा निजवित्तशक्त्या।
नित्य प्रतिष्ठाप्य समर्च्चते य: नन्दतात्सो कमलाभिधो हि।।"

उक्त लेख के भ्रमात्मक-पाठों का संशोधन 'सम्मत्तगुणणिहाणकव्व' की प्रशस्ति के आलोक में सहजतापूर्वक किया जा सकता है, जो संक्षेप में निम्नप्रकार है :—

"मूर्ति-निर्माता-कमलसिंह संघवी की वंशावली (मूर्ति-लेखानुसार)
साहु भोपा-(पत्नी णाल्ही)
खेमसिंह (पत्नी नोरादेवी) महाराज असरज धनपाल पाल्हा
संघपति कमलसिंह (प्रथम पत्नी सरस्वती) भोजराज (पत्नी देवकी)
मल्लिदास, पुण्यपाल (दूसरी मत्नी ईश्वरी) चन्द्रसेन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(1) गोपाचल-दुर्ग की उत्तुंगकाय आदिनाथ-तीर्थंकर की मूर्ति वि.सं. 1497 में राजा डूँगरसिंह के राज्य में गोपाचल-दुर्ग में **मुद्गल गोत्रीय संघपति कमलसिंह** ने निर्मित कराकर महाकवि रइधू द्वारा प्रतिष्ठित कराई थी। यह मूर्ति 58 फीट से भी ऊँची है। **सम्राट् बाबर** ने इसे अदिवा (आदिनाथ भगवान्) कहकर इसे भ्रमवश 40 फीट ऊँची बतलाया था तथा इसे तोड़ने को आदेश दिया था।

(2) मूर्ति-लेख में जो 'कांचीसंघ', 'मायूरान्वय' एवं 'रधू' पाठ पढ़े गये हैं, वे भ्रामक हैं। वे 'सम्मत्तगुणणिहाणकव्व' की प्रशस्ति के अनुसार क्रमश: काष्ठासंघ, माथुरान्वय एवं पण्डित रइधू है।

(3) **'सम्मत्तगुणणिहाण-कव्व'** की प्रशस्ति में साहु भोपा के चार पुत्र ही बताये गए हैं, किन्तु मूर्तिलेख से विदित होता है कि उनका 'धनपाल' नामक एक और पुत्र था। जन्मक्रमानुसार 'धनपाल' चतुर्थ-पुत्र था एवं 'पाल्हा' पांचवाँ-पुत्र।

(4) मूर्तिलेख में जो "..........ज्येष्ठ पुत्र भधायिपति कौल।। भ-भार्या" पढ़ा गया है, वह कौल 'वस्तुत:' 'कमलसिंह' होना चाहिए।

(5) मूर्तिलेख में पठित ". . . भार्या ज्येष्ठस्त्री सरसुती पुत्र मल्लिदास द्वितीय भार्या साध्वीसरा पुत्र चन्द्रपाल। क्षमप्तीपुत्र द्वितीय साधु श्रीभोजराजा भार्या देवस्य पुत्र पूर्णपाल. . ." लेख का यह उल्लेख कुछ असामंजस्यपूर्ण है। क्योंकि प्रशस्ति के अनुसार यह बिलकुल स्पष्ट है कि कमलसिंह संघवी की दो पत्नियाँ थी—सरस्वती एवं ईश्वरी। इनमें से केवल ईश्वरी को मल्लिदास नामक पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। प्रशस्ति के अनुसार चन्द्रसेन एवं पुण्यपाल ये दोनों कमलसिंह के छोटे भाई भोजराज के पुत्र थे।

(6) मूर्तिलेख में ". . . . काला सदा प्रणमति" पाठ पढ़ा गया, वह भी भ्रामक है। वस्तुत: वह "कमलसिंह: सदा प्रणमति" पाठ होना चाहिए।

(7) कमलसिंह अग्रवाल-जाति के मुद्गल-गोत्र में उत्पन्न हुआ था।

(8) रइधू-साहित्य की प्रशस्तियों से वह विदित होता है कि कमलसिंह संघवी का परिवार तीर्थभक्त एवं साहित्यरसिक था। उसके पिता खेमसिंह ने रइधू को आश्रय प्रदान कर उसे 'सिद्धंतत्थसार' नामक एक विशाल सिद्धान्त-ग्रन्थ (प्राकृत गाथाबद्ध) लिखने की प्रेरणा की थी। स्वयं कमलसिंह ने भी उसे **'सम्मत्तगुणणिहाणकव्व'** के लिखने की प्रेरणा की थी।

दूसरा मूर्ति-निर्माता था— **खेल्हा ब्रह्मचारी**, जो **हिसार** का निवासी था तथा जिसका विवाह कुरुक्षेत्र के निवासी सहजा साहु की पौत्री एवं तेजसाहु की पुत्री क्षेमी के साथ हुआ था। सन्तान-लाभ ने होने से इसने अपने भतीजे हेमा को गृहस्थी का भार सौंपकर ब्रह्मचर्य धारण कर लिया था तथा उसी स्थिति में उसने गोपाचल-दुर्ग में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चन्द्रप्रभ भगवान् की मूर्ति का निर्माण तथा कमलसिंह संघवी के सहयोग से एक शिखरबन्द मन्दिर का निर्माण और साथ ही मूर्तिप्रतिष्ठा का कार्य सम्पन्न कराया था।

गोपाचल-दुर्ग का तीसरा मूर्ति-निर्माता था **असपति साहू**, जिसका पिता तोमरवंशी राजा डूँगरसिंह का खाद्य एवं आपूर्ति मंत्री था।

अपने चार भाइयों में वह द्वितीय (मंझला) था। चतुर्विध-संघ का भार वहन करने से इसने 'संघपति की उपाधि प्राप्त की थी। विद्यारसिक, धर्मनिष्ठ एवं समाज का प्रधान होने के साथ-साथ वह कुशल राजनीतिज्ञ भी था। इसने श्रद्धावश अनेक जैनमूर्तियों एवं मंदिरों का निर्माण तथा उनकी प्रतिष्ठाएँ कराई थी।

चौथा मूर्ति-निर्माता था **संघाधिप नेमदास**। इसकी 'भीखा' एवं 'माणिको' नाम की दो पत्नियाँ थी। यह **योगिनीपुर** का निवासी था तथा वहाँ के वणिक्-श्रेष्ठों में अग्रण्य और समकालीन **राजा प्रतापरुद्र चौहान** (वि.सं. 1056 के लगभग) द्वारा सम्मानित था। इसके छोटे, चतुर्थ **भाई वीरसिंह** ने गिरनार-यात्रा की थी। इसके पिता का नाम **'तोसउ'** तथा वंश 'सोमवंश' के नाम से प्रसिद्ध था। नेमदास ने गोपाचल तथा अन्य कई स्थानों पर पाषाण एवं धातु की बहुत-सी मूर्तियों एवं गगनचुम्बी जिन-मंदिरों का निर्माण कराया था। रइधू का आशीर्वाद उसे प्राप्त था। अत: धार्मिक एवं साहित्यिक कार्यों में वे सदा इनके साथ रहते थे। महाकवि रइधू की प्रशस्तियों में इन तथ्यों की स्पष्ट जानकारी मिलती है।

महाकवि रइधू ने सहजपाल के पुत्र **सहदेव संघपति** को भी 'मूर्ति-प्रतिष्ठापक' कहा है लेकिन इसके सम्बन्ध में अन्य कोई विशेष-विवरण उपलब्ध नहीं होता। जो भी हो, वहाँ जैन-मूर्तियों का इतना अधिक निर्माण हुआ कि जिन्हें देखकर रइधू को 'अगणित' कहना ही पड़ा। राजा डूँगरसिंह एवं उनके पुत्र राजा कीर्तिसिंह, इन दोनों ने अपने राज्यकालों में कुल मिलाकर लगातार 33 वर्षों तक जैनमूर्तियों का निर्माण करवाने में हर प्रकार की सहायता प्रदान की थी। इस विषय में सुप्रसिद्ध इतिहासकार **हेमचन्द्र राय** के विचार ध्यातव्य हैं—

"सम्राट् बाबर जब गोपाचल दुर्ग में आया, तो इस मूर्तिकला-वैभव से क्रोधाभिभूत हो उठा तथा उसने उनको तोड़े जाने का आदेश दिया", इसका कनिंघमकृत अंग्रेजी-अनुवाद पठनीय है।

इन मूर्तियों को आधुनिक दृष्टि से प्रकाश में लाने का सर्वप्रथम श्रेय **फादर माण्टसेरॉट** को है, जो एक **योरोपियन घुमक्कड़** था तथा जिसने **सम्राट् अकबर** के समय में भारत की पदयात्रा के प्रसंग में **सूरत से दिल्ली** जाते समय गोपाचल-दुर्ग की जैनमूर्तियों के दर्शन किए थे और अपनी डायरी में उनका विस्तृत-विवरण अंकित किया था। उसने तथा **जनरल कनिंघम** ने इन मूर्तियों की बड़ी प्रशंसा की है। भारत सरकार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के प्रकाशन-विभाग ने तो उन्हें Rock Giant कहकर इजिप्ट (मिस्रदेश) के द्वितीय रेमसे के समान विशाल एवं पवित्र बताया है। कुछ पुरातत्त्ववेत्ताओं ने इन मूर्तियों के कारण तथा गोपाचल-दुर्ग की कलात्मकता, भव्यता एवं विशालता तथा साहित्य एवं संगीत-साधना का केन्द्र होने के कारण उसे Pearl in the nacklace of castele of Hind कहकर उसकी प्रशंसा की है।

सुप्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता जनरल कनिंघम ने उक्त मूर्तियों का वर्गीकरण निम्नप्रकार किया है :—

(1) उरवाही दरवाजे की जैन-मूर्तियाँ,
(2) दक्षिण-पश्चिम की जैन-मूर्तियाँ,
(3) उत्तर-पश्चिम समूह,
(4) उत्तर-पूर्व समूह, एवं
(5) दक्षिण-पूर्व समूह।

उरवाही-द्वार की जैन-मूर्तियाँ

उरवाही-घाटी की दक्षिणी ओर प्रमुख 22 दिगम्बर जैन-मूर्तियाँ है। उनके ऊपर जो मूर्तिलेख अंकित हैं, उनमें से 6 लेख पठनीय हैं और वे वि.सं. 1497 से 1510 के मध्यवर्ती तोमर-राजाओं के राज्यकाल के हैं। इन मूर्तियों में से क्रम सं. 17-20 एवं 22 मुख्य हैं। क्रम सं. 17 में आदिनाथ भगवान् की मूर्ति है, जिसपर वृषभ का चिह्न स्पष्ट है। इस पर एक विस्तृत-लेख भी अंकित है, जिसका अध्ययन सुप्रसिद्ध पुरातत्त्वविद् श्री राजेन्द्र लाल मित्रा ने किया है और रायल एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल की शोध-पत्रिका में (1862 ई. पृ. 423) प्रकाशित हो चुका है। सबसे उत्तुंग-मूर्ति क्र.सं. 20 की है (जिसे बाबर ने भ्रमवश 40 फीट ऊँची बताई थी, जबकि वह वस्तुत: 58 फीट से भी अधिक ऊँची है) उसका पैर 9 फीट लम्बा है तथा उसकी लगभग 6.5 गुनी मूर्ति की पूर्ण लम्बाई है। इस मूर्ति के सम्मुख एक स्तम्भ है, जिसके चारों ओर मूर्तियाँ है। क्र.सं. 22 में श्री नेमिनाथ की मूर्ति है, जो 30 फीट ऊँची है। इनके अतिरिक्त आसपास में और भी कई मूर्तियाँ है, जिनका अध्ययन चट्टानों के इधर-उधर गिर जाने के कारण ठीक से नहीं किया जा सका।

दक्षिण-पश्चिम की जैन-मूर्तियाँ

उरवाही की दीवाल के बाहर एक तालाब है, जिसके निकटवर्ती स्तम्भ पर 5 मूर्तियाँ प्रमुख हैं। इनमें से क्र.सं. 2 में सोती हुई एक महिला की मूर्ति है, जिसका मस्तक दक्षिण दिशा में तथा मुख पश्चिम-दिशा में है। इसकी लम्बाई 8 फीट है। उस पर जो पालिश है, वह अद्भुत है। सम्भवत: यह मूर्ति त्रिशला की हो। क्र.सं. 3 में बैठा हुआ दम्पत्ति-युगल है, जिसके समीप में एक बच्चा है। सम्भवत: वे राजा सिद्धार्थ एवं त्रिशला हैं, जो शिशु महावीर को गोद में लिए हुए हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्तरी-पश्चिम समूह

धोंदा-द्वार के उत्तर में यह मूर्ति-समूह है। इनमें से आदिनाथ की मूर्ति प्रमुख है, जिसके लेख के अनुसार वह वि.सं. 1527 में प्रतिष्ठित हुई थी।

उत्तर-पूर्व समूह

यह समूह मध्यवर्ती द्वार के पूर्व प्रवेश के समीप है। यहाँ की मूर्तियाँ छोटी-छोटी हैं तथा उन पर अभिलेख न होने के कारण उनका अध्ययन नहीं किया जा सका।

दक्षिणी-पूर्वीसमूह

गंगोला-टैंक के समीप यह सबसे बड़ा एवं प्रसिद्ध मूर्ति-समूह है। यहाँ कई मूर्तियाँ हैं। किन्तु इनमें लगभग 21 मूर्तियाँ प्रधान हैं, जिनमें से 18 मूर्तियाँ तो 20 फीट से 30 फीट तक ऊँची हैं तथा बहुत-सी मूर्तियाँ 8 फीट से 15 फीट तक ऊँची हैं। ऊपर से लेकर आधे मील की लम्बाई में पूरी पहाड़ी पर ये मूर्तियाँ विराजमान हैं।

रइधू-साहित्य एवं अन्य उपलब्ध विविध सामग्री के आधार पर लिखित यही है गोपाचल-दुर्ग की प्रेरक-कहानी। उसकी जैन-मूर्तियाँ अपनी भव्यता एवं विशालता में होड़ लगाती-सी प्रतीत होती हैं। जिन मर्मज्ञ कुशल-कलाकारों ने उन्हें गढ़ा होगा, वे आज हमारे सम्मुख नहीं हैं, उनके नाम भी अज्ञात हैं, उन्होंने अपनी ख्याति की परवाह भी न की होगी, किन्तु उनकी अनोखी कला, अनुपम शिल्प-कौशल, अतुलित धैर्य एवं अटूट साधना मानों इन मूर्तियों के माध्यम से हमारे सामने साकार उपस्थित हैं। और उनके निर्माता संघवी कमलसिंह, खेल्हा, असपति, नेमदास एवं सहदेव के सम्बन्ध में क्या लिखा जाए? उनके आस्थावान् विशाल हृदयों में जो श्रद्धा-भक्ति समाहित थी, उसके मापन-हेतु विश्व में शायद ही कहीं कोई मापयन्त्र हमें मिल सके। हाँ, जिनके दिव्य-नेत्र विकसित हैं, जो कला-विज्ञान की अन्तरात्मा के निष्णात हैं, जो इतिहास एवं संस्कृति के अमृतरस में सराबोर हैं, वे उक्त मूर्तियों की विशालता एवं कला का सूक्ष्म-निरीक्षण कर उनके हृदय की गहराई का अनुमान अवश्य लगा सकते हैं। और इन मूर्तियों के निर्माण कराने की प्रेरणा देकर उनमें प्राणप्रतिष्ठा कराने वाले रइधू, जिनकी महती कृपा से कुरूप, उपेक्षित एवं भद्दे आकार के कर्कश शिलापट्ट भी महानता, शान्ति एवं तपस्या के महान आदर्श बन गये, ऊबड़-खाबड़ एवं भयानक स्थान तीर्थस्थलों में बदल गये, उत्पीड़ित एवं सन्तप्त प्राणियों के लिये जो आराधना, साधना एवं मनोरथ-प्राप्ति के पवित्र मन्दिर एवं वरदानगृह बन गये। ज्ञानामृत की अजस्र-धारा प्रवाहित करनेवाले उस महान् आत्मा, सुधी, महाकवि रइधू के गुणों का स्तवन भी कैसे किया जाए? मेरी दृष्टि से उसके समय के कार्यों का प्रामाणिक विवेचन एवं प्रकाशन ही उसके गुणों का स्तवन एवं उसके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी तथा साहित्य और कलाजगत् तभी उसके महान् ऋण से उऋण हो सकेगा। ❖❖

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वास्तिक का चक्रव्यूह

—*डॉ. रमेश जैन*

हड़प्पा-संस्कृति की लिपि के विषय में शोधकार्य करते हुए प्रारंभ से ही ऐसा आभास होने लगा था कि इतिहासकाल के दौरान देश-विदेश में अपने प्रभावी-प्रचार के कीर्तिमान स्थापित करनेवाले भारतीय धार्मिक-आन्दोलनों की जड़ें कहीं गहरे, प्रागैतिहासिक-कालखण्ड में निहित हैं। विश्वप्रसिद्ध भारतविद् स्व. कुमारस्वामि ने प्राचीन मानवीय दृष्टि को विश्व (स्थूल-प्रकृति) की संरचनात्मक-अभिकल्पना पर आधारित होने का बात की है।[1] उसके अनुसार सभी प्राचीन मानव-समाज परिवर्तनशील-कालक्रम एवं स्तरों में विभाजित विश्व-रचना का अनुकरण अपने-अपने कार्य व्यापार में करते थे। इसी धारणा के चलते काल की वृत्ताकार-गति का अनुकरण करते हुए प्राचीन-मानव ने अपने देश एवं नगरों की भी एक वृत्त के रूप में कल्पना की और काल की परिधि का खण्डों के रूप में विभाजन देखते हुए उसी के अनुरूप समाज को विभिन्न-घटकों में विभाजित करके बसाया। स्वत: ही वृत्त की समग्रता में एकरूपता के रहते हुए भी घटकों की भिन्नता स्थायी-भाव ग्रहण कर लेती है। जैसेकि एक घटक यदि अपनी वैयक्तिक-स्थिति के अनुरूप बाँई ओर की गति में विश्वास करता है, तो कोई दूसरा अपनी स्थिति के अनुरूप दाँई ओर की गति में विश्वास करेगा। इसीप्रकार एक के लिए दिन की शुरूआत यदि सूर्योदय से होगी, तो किसी दूसरे के लिए चन्द्रोदय या मध्यरात्रि से।

प्राचीन मानवीय इतिहास की यही अवधारणा, स्वास्तिक चिह्न में सीधे अर्थात् दाहिनी ओर को मुड़ती भुजाओं और उलटे अर्थात् बाईं ओर की घूमती भुजाओंवाली दो भिन्न धारणाओं में चरितार्थ होती दिखती है। और उनके विषय में विश्वस्तर पर प्रचलित परस्पर विरोधाभाषी अवधारणाएँ स्वत: स्वाभाविक प्रतीत होती हैं। मगर स्वास्तिक के विषय में सोच को एक नया आयाम मिला, जब दिल्ली के आर्यसमाजी स्वामी बिरजानंद का एक शोधपत्र पढ़ने को मिला।[2] विद्वान् लेखक ने उसमें स्वास्तिक-चिह्न का इतिहास रेखांकित करते हुए प्राचीन ब्राह्मी-लिपि के अपने अध्ययन के आधार पर उस प्रतीक चिह्न को 'ओम' शब्द लिखे होने के रूप में पहचाना है। उनके अनुसार ब्राह्मी 'ओ' 'Z' अक्षर को एक-दूसरे को काटते हुए, द्विगुणित करके और फिर उसमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बिन्दु के रूप में अनुस्वार जोड़कर स्वास्तिक-चिह्न '卐' सिद्ध किया गया था।

स्वास्तिक-चिह्न सिद्ध होने का यह विचार वर्तमान-लेखक के हड़प्पा-लिपि के शोध-परिणामों से मेल खाता प्रतीत होता है। क्योंकि हड़प्पा-काल में स्वास्तिक-चिह्न न सिर्फ बहुतायत में प्रयुक्त पाया जाता है; बल्कि स्वास्तिक-चिह्न के दोनों रूप देखने को मिलते हैं और कभी-कभी तो दोनों रूप एक साथ भी। इसके अतिरिक्त हड़प्पा की लिपि में चिह्नों को द्विगुणित करके संयुक्त-चिह्न सृजन करने की बहुप्रचलित परिपाटी थी। साथ ही उस पद्धति में ऐसे संयुक्त-चिह्नों को संतुलन व समरूपता देने का सदा प्रयास रहता था।[3] अत: स्वास्तिक-चिह्न के रूपाकार और हड़प्पा की लिपि के मूलगुणों की समरसता ने स्वामी बिरजानंद जी के शोध की गम्भीरता स्थापित की। वैदिक-मन्त्रों में प्रयुक्त 'ओम्' ध्वनि की प्राचीन मांगलिक-चिह्न स्वास्तिक का एक होना सभी दृष्टि से स्वीकार्य प्रतीत होता है। बीच-बीच में मस्तिष्क में प्रश्न उठता था कि 'ओम्' का निहितार्थ क्या रहा होगा; जिससे स्वास्तिक-चिह्न के रूप में उसका प्रचलन सारे प्राचीन विश्व में हुआ। यह 'ओम्' ध्वनि भारतीय आध्यात्मिक चिन्तन की तो पहचान ही बन गयी।

इस प्रश्न का सरल उत्तर तो पारम्परिक वैदिक मान्यताओं में खोजा जा सकता है, जहाँ इस ध्वनि का ध्वन्यात्मक विश्लेषण करके उसमें साढ़े तीन ध्वनियों— 'अ', 'उ', 'म्' एवं अनुस्वार के रूप में सृष्टि की संकल्पना के आध्यात्मिक तत्त्वों की प्रतीकात्मकता निरूपिता की गई है। मगर यह तो बाद के इतिहास-काल में इस मांगलिक ध्वनि के माहात्म्य को बढ़ानेवाला प्रयास भी हो सकता था। अत: ब्राह्मी के 'ओ' स्वर के माध्यम से स्वास्तिक-चिह्न का 'ओम्' पढ़ा जाना शोध-विचार का प्रश्न बना रहा। इस दिशा में शोधकार्य से न सिर्फ ब्राह्मी-लिपि व हड़प्पा की लिपि के अंतर्संबंधों को समर्थन मिला बल्कि ब्राह्मी के "Z" ध्वनि-चिह्न के प्राचीन फिनीशिया (वर्तमान लेबनान देश) की लिपि के सातवें अक्षर जेजिन "Z" जो सामान्यत: 'ज' ध्वनि के लिए प्रयुक्त होता है, उससे भी समानता स्थापित हुई। इसीप्रकार थोड़े अन्तर के साथ इसी वर्णमाला का दसवां अक्षर योथ '२' भी न सिर्फ आकार में समानता रखता है; बल्कि 'य' ध्वनि के लिये प्रयुक्त होता है। मगर इस वर्णमाला में जेजिन व योथ के समान सर्पिल-आकार ग्रहण करनेवाला इक्कीसवां अक्षर 'शिन' अर्थात् 'स' भी है। इनके अतिरिक्त इसी वर्णमाला में उल्टा सर्पिल आकार लिए हुए चौदहवां अक्षर 'ʃ' नून अर्थात् 'न' भी है। फिनीशिया की लिपि में मात्र 22 ध्वनि-चिह्न (व्यंजन) होते हैं।[4] इस ध्वन्यात्मक-लिपि को ग्रीक, रोमन एवं बाद की विकसित हुई अरबी-लिपियों की जन्मदात्री समझा जाता है। इस लिपि से समय-समय पर विद्वानों ने ब्राह्मी तथा हड़प्पा की लिपि के संबंध स्थापित करने का प्रयास किया है। स्वयं वर्तमान-लेखक भी ब्राह्मी के समान फिनीशियन को हड़प्पा की मूल ध्वन्यात्मक-लिपि की संतान समझता है।[5] मगर इस संबंध में स्मरणीय है कि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ब्राह्मी, रोमन व ग्रीक लिपियों के विपरीत फिनीशियन-लिपि को दाहिने हाथ की ओर से प्रारम्भ करके उर्दू के समान पढ़ा जाता है एवं इस लिपि का इतिहास हड़प्पा-संस्कृति के मान्य विसर्जन-काल से लगभग एक हजार वर्ष बाद प्रारम्भ होना समझा जाता है।

हाँ तो फिनीशियन का 'जेजिन' नामक ध्वनि चिह्न 'Z' उस वर्णमाला का सातवाँ अक्षर है। संगीत के अनुशासन में सरगम का सातवाँ स्वर 'नी' अर्थात् निषाद होता है। इसी वर्णमाला के 21वें अक्षर '~' शिन अर्थात् 'स' से आरम्भ करके यदि उल्टे क्रम से चलें, तो आगे के सात अक्षर सरगम के सात-स्वरों से अद्भुत ध्वन्वयात्मक-समानता रखते प्रतीत होते हैं।[6] इनमें 16 से 14 तक के तीन अक्षर 'O', '≢' एवं '∫' में क्रम कुछ गड़बड़ाया-सा लगता है। हो सकता है इनमें संगीत के अनुशासन में काल की निषाद की अवधारणा के समान कोई नियम लगता हो। इस वर्णमाला का 'O' एजिन (अंग्रेजी का ओ) अक्षर स्वास्तिक की वृत्ताकार-गति की ओर इशारा करता है। इसीप्रकार 15वें अक्षर 'सामेख' से यद्यपि 'स' ध्वनि प्राप्त होती है मगर इसी अक्षर का संबंध रूपाकार के आधार पर ब्राह्मी के '⊥' (न) या 'I' (ण) से स्थापित होता है। इसमें स्वास्तिक-चिह्न के '卐' कट्टस-आधारित रूपाकार का जुड़ाव परिलक्षित होता है। इसीप्रकार 14वां '∫' नू (न) पुन: सर्पिल-रेखाओं के कट्टस 卐 चिह्न का आधार हो सकता है; अत: कहा जा सकता है ब्राह्मी के 'Z' अक्षर के समान ही इन तीन अक्षरों 'O', '≢' एवं ∫ का संबंध स्वास्तिक से जुड़ता है। इसमें 'न' और 'ओ' ध्वनियों की स्वास्तिक के रूपाकार में उपस्थिति साफ दिखाई देती है। यदि स्वास्तिक में इन दोनों ध्वनियों 'न' व 'ओ' को हम ठीक से पहचान रहे हैं, तो स्वास्तिक-चिह्न को 'णमो' रूप में भी पढ़ा जाएगा। इस आधार पर 'णमोकार' एवं 'ओंकार' शब्दों के पर्यायवाची-गुण को समझा जा सकता है।

हड़प्पा-लिपि के वाचन-प्रयास के क्रम में उस लिपि में आने वाले '√' अथवा '∫' चिह्नों को सामान्यत: 'न' ध्वनि देनेवाले चिह्न के रूप में पहचाना जाता है, जिसके परिणामस्वरूप '√ ※' चिह्नों से 'न संभव' शब्द-समूह (संभव नहीं) प्राप्त होता है। इसमें आगे विस्तार करते हुए जब '√' चिह्न का मूल-स्वर 'अ' की ध्वनि प्रदान की गई, तब 'अ संभव' शब्द-समूह प्राप्त हुआ, जिसका अर्थ भी समान (असंभव अर्थात् संभव नहीं) ही रहा। इससे 'अ' एवं 'न' ध्वनियों की प्रकृति में समानता समझ में आई। इसीप्रकार णमोकार व ओंकार से होते हुए 'प्रणव' व 'प्रणाम' को समझा जा सकेगा। ये दोनों शब्द 'प्रणव' व 'प्रणाम' मात्र ध्वनि-साम्य ही नहीं रखते; बल्कि कहीं गहरे में जैन तथा वैदिक आस्थाओं के जुड़ाव की ओर भी इंगित करते हैं।

यहाँ यह उल्लेखनीय हो जाता है कि महादेवन के अनुसार हड़प्पा के लेख-क्रमांक 4306-217101/28201 में जो पकी-मिट्टी की एक पट्टिका पर उसके दोनों ओर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अंकित है।[7] दोनों ओर समान लिखावट के रहते उसके एक ओर चिह्नों के साथ सीधे उल्टे के क्रम में पाँच स्वास्तिक भी एक पंक्ति में बने हैं। चिह्नों से यदि ध्वनि-समूह 'य वृ प्राण' सही प्राप्त हुआ है, तो उसका अर्थ होता है पाँच स्वास्तिक अर्थात् पंच णमोकार 'जो प्राणों की रक्षा करते हैं।' इन चिह्नों को यदि उल्टे क्रम में भी पढ़ा जाएगा अर्थात् 'प्राण वृ य' अथवा 'प्रणव य' तो भी अर्थ समान ही रहेंगे — 'प्राणों की रक्षा करता है जो' अथवा 'प्रणव है जो' इस पट्टिका के दूसरे फलक पर पुन: ' ' अंकित हैं साथ ही ' ' चिह्न के साथ एक शेर की आकृति चिह्नित है, मानों कहा जा रहा है— "मार्ग में ढोल (पणव) की ध्वनि के समान 'णमोकार' जंगली जीवों से प्राणों की रक्षा करता है।" अब यदि उपरोक्त चिह्न ' ' से 'संचरण' अथवा 'सतिया' का उच्चारण प्राप्त होता है, तो अर्थ होगा 'संचरण के दौरान' अथवा 'सतिया' अर्थात् 'ओंकार/णमोकार प्राणों की रक्षा करता है।'

हड़प्पा के अभिलेख के इस वाचन-प्रयास से एक ओर णमोकार एवं ओंकार ध्वनियाँ पर्यायवाची स्थापित होती दिख रही है, वहीं उसमें जैनों के मूल-मंत्र 'पंच णमोकार' की प्राचीनता स्थापित होती है। साथ ही 'प्रणव' शब्द 'प्राण वृ' अथवा 'वृ प्राण' के रूप में स्वास्तिक (णमोकार) अथवा/ओंकार) को प्राणरक्षक के रूप में परिभाषित भी करता है।

संदर्भग्रन्थ-सूची

1. ए.के. कुमारस्वामि, द एच.आर.डी. कार्यक्रम, जयपुर (1983) पृष्ठ 14-15
2. स्वामी बिरजानंद, पुरातत्त्व संग्रहालय, झज्जर, हरियाणा
3. डॉ. रमेश जैन, टेस्ट डिसाइफरमेन्ट ऑफ द हड़प्पन इंस्क्रिपशन्स, पुराभिलेख पत्रिका, वर्ष 2001
4. जॉर्ज वूलर, इण्डियन पैलियोग्राफी, ऑरियंटल बुक्स रिप्रिंट कार्पोरेशन 1980, पृष्ठ 26
5. डॉ. रमेश जैन (2001 पृष्ठ 56-88)
6. डॉ. रमेश जैन, हड़प्पन वृत्र एण्ड फिनीशियन एल्फाबेट्स गिव इण्डिया इट्स हिस्टोरियोजियोग्राफिकल एन्टीटीज, 'भारतीय पुरातत्व परिषद्' का बड़ोदरा (2000) में अधिवेशन
7. इरावती महादेवन, इण्डस स्क्रिप्ट, 1977, पृष्ठ-क्रमांक 810-811

❖❖

'प्राकृतविद्या' के वर्ष 12, अंक 3, अक्तूबर-दिसम्बर '2000 ई. में पृष्ठ संख्या 51-58 तक प्रकाशित लेख 'हड़प्पा की मोहरों पर जैनपुराण एवं आचरण के संदर्भ' के लेखक के रूप में स्पष्ट-सूचना न होने के कारण असावधानीवश डॉ. रमेश चन्द्र जैन बिजनौर (उ.प्र.) का परिचय 'लेखक-परिचय' के रूप में प्रकाशित हुआ था। वह लेख वस्तुत: डॉ. रमेश जैन, भोपाल (म.प्र.) के द्वारा लिखित था। अपनी इस असावधानी के लिए खेद व्यक्त करते हुए हम पुन: स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि उक्त लेख के लेखक डॉ. रमेश जैन, भोपाल हैं। प्रस्तुत आलेख भी उन्हीं की सारस्वत-लेखनी से प्रसूत एक अन्य गरिमापूर्ण-प्रस्तुति है। —सम्पादक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हे पूज्य गुरु शत-शत प्रणाम

(आचार्य 108 श्री विद्यानन्दजी के पावन चरणों में)

—अरुण कुमार जैन इंजीनियर

हे भूमंडल के प्रखर सूर्य, देदीप्यमान, ओ ज्योतिर्मान,
हे पूज्य गुरु ! शत-शत प्रणाम।
हे पूज्य गुरु ! शत-शत प्रणाम।।

कर्नाटक का 'शेडवाल' ग्राम, माँ 'सरस्वती' प्रांगण महान्,
अप्रैल बाईस सन् पच्चीस में, बालक 'सुरेंद्र' जन्मे महान्।। हे पूज्य गुरु... ।। 1।।
आह्लादित हो पिताश्री, कालप्पा आणप्पा उपाध्ये जी,
अरु बंधु-सखा हर्षित होते, लख रूप आप देदीप्यमान। हे पूज्य गुरु...... ।। 2।।

जल-क्रीड़ा सरिता में प्रहरों, नभ-शिखर हरीतिमा प्रांगण में,
मानो तब ही से कहते हों, पावन होगा कण-कण भू का,
पाकर चरणों से अमृतपान। हे पूज्य गुरु........ ।। 3।।

देखी यह लीला भी जग ने, अभयदाता कर से अस्त्रों को,
करें संज्जित आयुधशाला में, विचित्र विरोधाभास महान्। हे पूज्य गुरु....... ।। 4।।

गांधी, पुकार सुन छोड़ इसे, ले लिया 'तिरंगा' हाथों में,
ब्रह्मचर्य-व्रत लिया आजीवन, बन गये पथिक नव-पथ के तब,
था ऋषभदेव का पथ महान्।। हे पूज्य गुरु........ ।। 5।।

गुरु पूज्य महावीरकीर्ति से, बने पार्श्वकीर्ति क्षुल्लक जी तब,
मोह, ममता, बंधन तोड़ दिया, राग-द्वेष से भी मुख मोड़ लिया।
पग से नापी भारत-भूमि, दिया कोटि-जनों को अमृतदान।। हे पूज्य गुरु... ।। 6।।

लाल किले का वह प्रांगण, धर्म-राष्ट्रभक्ति से परिपूरित,
गुरु पूज्य श्री देशभूषण से, सन् तिरसठ माह जुलाई को,
बने मुनि श्री विद्यानंद महान्।। हे पूज्य गुरु..... ।। 7।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्तुंग-हिमालय के हिम में, डग भरके पहुँचे पूज्य श्री,
हिम में दिगंबर मुनि-काया, हतप्रभ रह गया राष्ट्र भारत,
तप, दृढ़-निश्चय व ब्रह्मचर्य की
जग ने जानी महिमा महान्।। हे पूज्य गुरु...... ।। 8।।

शशि-से हिम में रवि-सी काया, या अग्निकुण्ड में कुंदन हो,
कहा दसों दिशाओं ने मिलकर, उद्घोष किया जड़-चेतन ने,
स्वीकारो विनयानत प्रणाम।। हे पूज्य गुरु....... ।। 9।।

गोमटेश-सहस्राभिषेक, स्थापना कुंद-कुंद भारती की,
कुम्भोज बाहुबलि सामंजस्य, 'गोमट्टगिरि' पावन-सृजन,
इन सबके ही तो प्रेरक हो, उद्बोधक हो, संबोधक हो,
कैसे बोलूँ महिमा महान्।। हे पूज्य गुरु....... ।। 10।।

वीर-निर्वाण पच्चीस सदी, अरु जैनधर्म का पावन-ध्वज,
प्रभु बावनगजा, विश्ववंदनीय, नव-कृतियों के प्रेरक संबल।।
सब भक्ति-भाव से मौन मुखर, करें स्तवन, वंदन व गुणगान।। हे पूज्य गुरु... ।। 11।।

कोटि हताशों को सम्बल, व्यथित-प्रताड़ित को राहत,
भय-क्रोध-काम से घिरे हुये जो, उनमें हो प्रेम-शांति-निर्झर,
अपना लें वे, 'भक्तिपथ' महान्।। हे पूज्य गुरु...... ।। 12।।

बस एक याचना मेरी है, दे दो इतना-सा आत्मबल।
हर स्थिति और परिस्थिति में, न धर्म तजूँ, न कर्म तजूँ,
बढ़ता जाऊँ कर्त्तव्य-पथ पर, हो निर्विकार, हे पूज्यमान।। हे पूज्य गुरु.... ।। 13।।

लो राष्ट्रसंत, मेरे प्रणाम।।
कोटि-कोटि वंदन/प्रणाम।
आचार्यश्री शत-शत प्रणाम।। ❖❖

एक विशेष बात

"अइसय पावी जीवा धम्मियपव्वेसु ते वि पापरया।
ण चलंति सुद्ध धम्मा धण्णा कि वि पावपव्वेसु।।"

—(वही, गाथा 29)

अर्थ :— जो अत्यन्त पापी जीव हैं वे धार्मिक पर्वों में भी पाप में लीन रहते हैं और जो शुद्ध धर्मात्मा जीव हैं, वे किसी पाप पर्व में भी धर्म से चलित नहीं होते हैं। ◆◆

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'आदर्श' और 'आत्मा'

—श्रीमती रंजना जैन

> दर्पण अपनी निर्मलता एवं निष्पक्षता के कारण ही 'आदर्श' की संज्ञा को प्राप्त करता है। वह अपने में प्रतिबिम्बित होनेवाले पदार्थों को झलकाने के लिए उनके पास चलकर नहीं जाता है, और न ही उन पदार्थों को अपने पास बुलाता है; फिर भी उसके निर्मलता-गुण के कारण वे पदार्थ उसमें झलकते हैं। दर्पण की यह विशेषता ज्ञानस्वभावी आत्मा में अद्भुत-समानता रखती है। इसीलिए विदुषी लेखिका ने विविध-प्रमाणपूर्वक अपने इस आलेख में 'आदर्श' और 'आत्मा' की इस समानता को प्रभावी रीति से प्ररूपित किया है। —सम्पादक

लोकजीवन में 'आदर्श' शब्द 'आइडियल' (Ideal) के अर्थ में अधिक-प्रचलित हो गया है। जबकि प्राचीन ग्रन्थों आदि में इसका सर्वाधिक प्रचलित अर्थ दर्पण/आईना/मुँह देखने का शीशा है। 'आङ्' उपसर्गपूर्वक 'दृश्' धातु से 'घञ्' प्रत्यय का विधान करने पर 'आदर्श' शब्द निष्पन्न होता है। इसका व्युत्पत्तिजन्य-अर्थ इसप्रकार किया जाता है— "आङ् समन्तात् दर्शयति प्रकाशयति इति आदर्श:" अर्थात् जो पूरी तरह से प्रकट करे या दिखाए, वही 'आदर्श' है। चूँकि दर्पण में व्यक्ति अपने आप को देख पाता है, अत: दर्पण को 'आदर्श' कहा गया। किन्तु वास्तव में लोकालोक को पूर्णत: झलकाने की सामर्थ्य मात्र आत्मा में है; अत: 'आत्मा' ही वास्तव में 'आदर्श' संज्ञा के लिए सर्वथा उपयुक्त है। आत्मा की लोकालोकदर्शी-शक्ति के बारे में आचार्य कुन्दकुन्द 'पवयणसार' ग्रन्थ में लिखते हैं—

"आदा णाणपमाणं, णाणं णेयप्पमाणमुद्दिट्ठं।
णेयं लोयालोयं, तम्हा णाणं हु सव्वगदं।।"

—(पवयणसार, गाथा 1/23)

अर्थ :— आत्मा ज्ञानप्रमाण है, ज्ञान को ज्ञेयप्रमाण कहा गया है। ज्ञेय सम्पूर्ण लोकालोक है; इसलिए आत्मा लोकालोक के सभी पदार्थों का ज्ञाता या 'सर्वगत' है।

इसी तथ्य को पुष्ट करते हुए आचार्य अमृतचन्द्र लिखते हैं—

"दर्पणतल इव सकला प्रतिफलति पदार्थमालिका यत्र"

—(पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, श्लोक 1)

अर्थ :— उस आत्मज्योति में दर्पण के तल (आईना) के समान सम्पूर्ण पदार्थमालिका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रतिबिम्बित होती है या झलकती है।

इसीकारण आत्मविद्या को भी दर्पण के समान कार्य करनेवाली कहा गया है—

"यद् विद्या दर्पणायते"

—(आचार्य समन्तभद्र, रत्नकरण्ड श्रावकाचार, श्लोक 1)

ऐसे निर्मलज्ञानस्वभावी होने से आत्मा को जगत्पति (तीनों लोकों का स्वामी) भी कहा है— **"य आदर्श इवाभाति, स एव जगतां पतिः।"**

—(आचार्य सोमदेव सूरि, यशस्तिलकचम्पू, 7/56)

अर्थ :— जिसका आत्मा दर्पण के समान निर्मल प्रकाशित हो, वही जगत् का स्वामी है।

आत्मस्वरूप निर्मल होते हुए भी संसारी मोही जीवों को उसके दर्शन नहीं होते, यह दृष्टि का दोष है, वस्तु का नहीं। इसे स्पष्ट करते हुए जैनाचार्य लिखते हैं—

'रायादिमलजुदाणं, णियप्परूवं ण दिस्सदे किं पि।
समला<u>दरसे</u> रूवं, ण दिस्सदे जह तहा णेयं।।'

—(आचार्य कुन्दकुन्द, रयणसार 90)

अर्थ :— रागादि-मल से युक्त जीवों को अपना आत्मस्वरूप कुछ भी दिखाई नहीं देता। जैसे मलिन-दर्पण में रूप दिखाई नहीं देता, उसीप्रकार इसे समझना चाहिए।

'पश्यतोऽपि यथाऽऽ<u>दर्शे</u>, संक्लिष्टे नास्ति दर्शनं।
तत्त्वं जले वा कलुषे, चेतस्युपहते तथा।।'

—(चरक, शरीरस्थ., 1-55)

अर्थ :— जिसप्रकार गन्दे शीशे या गन्दे जल में मुख दिखाई नहीं पड़ता, उसीप्रकार चित्त राग-द्वेष से विकृत होने से ज्ञान यथार्थ नहीं होता।

आत्मा की चैतन्यशक्ति के दो आकार आचार्य भट्ट अकलंकदेव ने प्रतिपादित किए हैं और दोनों को दर्पण की उपमा दी है—

चैतन्यशक्तेर्द्वावाकारौ ज्ञानाकारो ज्ञेयाकारश्च। अनुपयुक्त-प्रतिबिंबाकारा<u>दर्शतलवत्</u> ज्ञानाकारः, प्रतिबिंबाकारपरिणता<u>दर्शतलवत्</u> ज्ञेयाकारः। तत्र ज्ञेयाकारः स्वात्मा, तन्मयत्वाद्, घटव्यवहारस्य ज्ञानाकारः परात्मा सर्वसाधारणत्वात्।'

—(आचार्य अकलंक, तत्त्वार्थ राजवार्तिक, 1-6-5)

अर्थ :— चैतन्य-शक्ति के दो आकार होते हैं— ज्ञानाकार और ज्ञेयाकार। प्रतिबिंब-शून्य दर्पण की तरह 'ज्ञानाकार' है, और प्रतिबिंब-सहित दर्पण की तरह 'ज्ञेयाकार'। इनमें ज्ञेयाकार 'स्वात्मा' है, क्योंकि घटाकार ज्ञान से ही घट-व्यवहार होता है, और ज्ञानाकार 'परात्मा' है; क्योंकि वह सर्वसाधारण है।

इनमें से ज्ञानाकार को अपनानेवाले 'ज्ञानी' कहे जाते हैं और ज्ञेयाकार के लोभी व्यक्तियों को 'अज्ञानी' कहा गया है। इसी बात को आचार्य मानतुंग स्वामी जल में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रतिबिम्बित चन्द्रबिम्ब का दृष्टान्त देकर इसप्रकार स्पष्ट करते हैं—

'बालं विहाय जलसंस्थितमिंदुबिम्बमन्य: क इच्छति जन: सहसा गृहीतुम्।'

—(*भक्तामरस्तोत्र, 3*)

अर्थ :— जल में स्थित चन्द्र-प्रतिबिंब को तत्काल ग्रहण करने के लिए अज्ञ बालक को छोड़कर कौन बुद्धिमान इच्छा करता है? अर्थात् कोई भी नहीं।

जैन-परम्परा में जो अष्ट-मंगल कहे गए हैं, उनमें भी निर्मल-दर्पण एक मंगलद्रव्य माना गया है—**"भिंगार-कलस-<u>दप्पण</u>-चामर-धय-वियण-छत्त-सुपयट्ठा।**

अट्ठुत्तरसमसंखा पत्तेकं मंगला तेसु।।"

—(*तिलोयपण्णत्ती, 4/1880*)

अर्थ :— (जिनेन्द्र प्रतिमाओं के पास) भृंगार, कलश, दर्पण, चँवर, ध्वजा, बीजना, छत्र और सुप्रतिष्ठ —ये आठ मंगलद्रव्य होते हैं। इनमें से प्रत्येक 108 की संख्या में वहाँ होते हैं।

'दर्पण' या 'आदर्श' को मंगलद्रव्य तो कहा गया, किंतु निमित्तशास्त्रों में दर्पण में प्रतिबिम्बित छाया के रूपों से भी शुभाशुभ-फलों का विवेचन किया गया है। आचार्य वाग्भट्ट 'प्रतिच्छाया' का स्वरूप-निरूपण करते हुए लिखते हैं—

"आतपादर्शतोयादौ या संस्थानप्रमाणत:।"

—(*अष्टांगहृदय, 5/42*)

अर्थ :— धूप, दर्पण और जल आदि में शरीर के आकार आदि के अनुरूप जो छाया होती है, उसे 'प्रतिच्छाया' कहते हैं।

इसके शुभाशुभ की सूचना आचार्यों ने इसप्रकार दी है—

'नाच्छायो नाप्रभ: काश्चद्विशेषाश्चिह्नयन्ति तु।

नृणां शुभाशुभोत्पत्तिं काले छायाप्रभश्रिया:।।'

—(*चरक, इन्द्रय, 7-17*)

अर्थ :— कोई भी पुरुष छाया और प्रभा से रहित नहीं होता। मनुष्य की विशेषताओं को छाया और प्रभा ही स्पष्ट रूप से प्रकट करती है। समय पर छाया और प्रभा के आश्रित भेद शुभ और अशुभ की उत्पत्ति के सूचक भी होते हैं।

'<u>आदर्श</u>लोकनं प्रोक्तं, मांगल्यं कांतिकारकं।

पौष्टिकं बलमायुष्यं, पापालक्ष्मीविनाशनं।।'

—(*सार्थरत्नाकर, नित्य. 44, पृ. 90*)

अर्थ :— आदर्श (दर्पण) को देखने से मंगल की प्राप्ति होती है। दर्पण कांतिकारक है, पुष्टिकारक है, बलदायक है, आयु-वृद्धि करनेवाला है, और पाप का विनाशक करके लक्ष्मी का निवासस्थानवाला है।

❖❖

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शांतिनिकेतन वे दिन, वे लोग

—हीरालाल जैन

बीसवीं सदी के प्रारम्भ में 'शांतिनिकेतन' की स्थापना रवीन्द्र के पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ ने 'ब्रह्मचारी-आश्रम' के रूप में की थी। इसको रवीन्द्रनाथ ने पाल-पोसकर ज्ञान व भाईचारे के 'विश्वनीड़' के रूप में विकसित किया। विश्वभारती कहने को भले ही आश्रम था, पर वह गुरुकुलों जैसी संकीर्णता एवं पोंगापंथी से मुक्त था।

सन् 1935 में कोटा के राजकीय महाविद्यालय से इंटर की परीक्षा पास करने के बाद मैंने विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर के 'शांतिनिकेतन' में 'अर्थशास्त्र में बी.ए. आनर्स में प्रवेश लेने का निर्णय लिया। तब मैंने इस बात की कल्पना भी नहीं की थी कि मुझे वहाँ रवीन्द्रनाथ टैगोर, कला-मनीषी नन्दलाल बोस और संत-विद्वान् आचार्य क्षितिमोहन सेन, दीनबंधु सी.एफ. एंड्रयूज, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पं. बनारसीदास चतुर्वेदी जैसी दिग्गज हस्तियों का इतना निकट सान्निध्य प्राप्त होगा।

कोटा में मैं कुर्ता-पाजामा पहनता था, किन्तु शांतिनिकेतन में गांवड़ेल (गँवार) न समझा जाऊँ —इसलिए जीवन में पहली बार पतलून व खुले गले का कोट सिलवाकर साथ ले गया था। परन्तु वहाँ कोट-पतलून के पहनावे को गधे के सिर पर सींग की तरह नदारद पाकर तथा कुर्ता-धोती या कुर्ते-पाजामे का चलन देखकर मेरे सुखद-आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा।

विश्वभारती की स्थापना 'अंतर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय' के रूप में हुई थी। वहाँ शोध, चित्रकला, संगीत आदि विधाओं में शिक्षा के अपने पाठ्यक्रम एवं उपलब्धियों की व्यवस्था थी; पर स्नातक-स्तर तक की कालेजी शिक्षा के लिए 'शांतिनिकेतन' को कलकत्ता-विश्वविद्यालय ने मान्यता दे रखी थी। विश्वभारती आश्रम नगरीय कोलाहल से दूर प्रकृति की सुरम्य-गोद में स्थित था। वहाँ कक्षाएँ कमरों में नहीं, खुले मैदान या वृक्षों के नीचे लगा करती थीं। हर कक्षा के लिए स्थान नियत थे और छात्र-छात्राएँ अपने आसन लिये वहाँ पहुँच जाते थे।

विश्वभारती में प्रात: एवं अपराह्न में कक्षाएँ लगती थीं और शाम को खेलकूद और भोजन के बाद सांस्कृतिक कार्यक्रम होते थे। वहाँ बुधवार को साप्ताहिक-अवकाश रहता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

था। उस दिन प्रात: मंदिर (सभाकक्ष) में गुरुदेव का या उनकी अनुपस्थिति में किसी दूसरे आचार्य का सामयिक विषयों पर प्रवचन हुआ करता था।

विश्वभारती का वातावरण पूर्णत: धर्म-निरपेक्ष था। वहाँ कोई त्यौहार या समारोह धर्म या संप्रदाय के आधार पर नहीं मनाया जाता था। प्रकृति के साथ तादात्म्य होने के कारण वहाँ वर्षा, बसंत व शरद ऋतुओं का आगमन वर्षा-मंगल, बंसतोत्सव एवं शरदोत्सव के रूप में नाच-गान के साथ उल्लासपूर्वक मनाया जाता था। उनमें सभा-सम्मेलनों के अलावा नृत्य-संगीत मेला, यात्रा, बाउल (लोकनाट्य व लोकसंगीत) आदि के कार्यक्रम विशेषरूप से आयोजित किये जाते थे।

संपूर्ण शिक्षण-संस्थान का नाम 'विश्वभारती' था। उसके अंतर्गत कालेज-विभाग का नाम 'शांतिनिकेतन', कला-विभाग का नाम 'कलाभवन', हस्तकला तथा कुटीर-उद्योग-शिक्षण-केन्द्र का नाम 'श्रीनिकेतन' और शोध-विभाग का नाम 'विद्याभवन' था। लड़कों के छात्रावास के नाम 'द्वारिका' और 'उत्तरायण' तथा उन्हीं दिनों मिट्टी व तारकोल से निर्मित कलात्मक कुटीर का नाम था 'श्यामलि'।

'यह करो या यह न करो' जैसी कोई आचार-संहिता थोपी न होने के बावजूद आश्रम का जीवन बड़ा अनुशासित था। आश्रम में करीब दो वर्ष के अपने आवासकाल में कक्षा में अकारण विलम्ब से पहुँचना या अनुपस्थित होना, आपसी तनाव या लड़ाई-झगड़े की एक भी घटना मुझे देखने को नहीं मिली। यहाँ सहशिक्षा की व्यवस्था थी; परन्तु यौन-सम्बन्धी अवैध-सम्बन्धों का एक भी प्रसंग सामने नहीं आया। स्वस्थ-प्रेम-प्रसंग अलबत्ता निर्मित हुए, जो आश्रम में ही या बाद में विवाह में परिणत हो गये। 'सादा-जीवन उच्च-विचार' का इससे उत्कृष्ट-उदाहरण मुझे अभी तक अन्यत्र देखनें को नहीं मिला।

विश्वभारती में मुझे सबसे अधिक प्रभावित किया वहाँ के स्नेहसिक्त-पारिवारिक वातावरण ने। रवीन्द्रनाथ गुरुजन, छात्र, छात्राएँ और कर्मचारी का विभेद भूलकर सब इसतरह से घुल-मिलकर रहते थे, मानों एक ही परिवार के सदस्य हों, जिसके मुखिया हों गुरुदेव। आश्रम में पारस्परिक संबोधन की भी बड़ी स्नेह और सम्मानपूर्ण प्रणाली प्रचलित थी। रवीन्द्रनाथ 'गुरुदेव' के नाम से पुकारे जाते थे, तो कला मनीषी नन्दलाल बोस 'मास्टर मोशाय' (महाशय) और आचार्य क्षितिमोहन 'क्षितिबाबू' के नाम से तथा अन्य गुरुजन या उम्र में बड़े पुरुष व महिला के नाम के अंत में 'दा' या 'दी' जोड़कर। जैसे गुरुदेव के निजी सचिव अनिल कुमार चंदा को, जो राजनीतिशास्त्र के हमारे प्राचार्य भी थे, 'अनिल दा' कहकर पुकारा जाता था। हिन्दी-शिक्षक आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी 'बड़े पंडित जी' और दुर्गा प्रसाद पांडे 'छोटे पंडित जी' के नाम से प्रसिद्ध थे। गुरु-पत्नी को 'बहू दी' (भाभी) और बुजुर्ग महिला को 'मशी मा' (मौसी) कहकर पुकारा जाता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कितने आत्मीयपूर्ण और सरस थे ये संबोधन।

शांतिनिकेतन में जाति, संप्रदाय, क्षेत्र और भाषागत-विभेद का किंचित् मात्र भी अहसास नहीं होता था और न वहाँ अमीर-गरीब या सामन्त-साधारणजन के बीच ही कोई फर्क किया जाता था। सब एक ही परिवार के सदस्यों की भाँति रहते, खाते और साथ घूमते थे।

अफ्रीका के लौटने पर गांधी जी काफी समय तक शांतिनिकेतन में रहे थे। वे चाहते थे कि आश्रमवासी अपना सब काम अपने हाथ से करें, किन्तु गुरुदेव गांधीजी के इस विचार से सहमत नहीं थे। फिर भी आश्रम में गांधी जी के प्रवास को चिरस्मरणीय बनाने के लिए हर पूर्णिमा को आश्रम की सफाई, झाड़-पोंछ आदि सब काम अध्यापक व छात्र स्वयं करते थे। उस दिन हरिजन व अन्य कर्मचारियों का अवकाश रहता था तथा वे हमारे अतिथि के रूप में भोजनशाला में हमारे साथ बैठकर भोजन करते थे। शांतिनिकेतन पहुँचने पर बुधवार को साप्ताहिक प्रवचन के अवसर पर गुरुदेव के पहली बार दर्शन हुए। प्रथमदृष्टि-प्रेम की भाँति प्रथमदृष्टि-श्रद्धाभावना से मुग्ध हो गया। उनका गौर-वर्ण, दरवेशों जैसा लम्बा चोंगा, शुभ्र-श्वेत-जटा व लहराती दाढ़ीवाला सौम्य और आकर्षक व्यक्तित्व तथा मधुर, किन्तु बुलंद-आवाज चुंबक की भाँति अपनी ओर खींच लेते थे। कोई यह न भी बताता कि वे गुरुदेव हैं, तब भी उस ऋषि की भव्य छवि निहारकर श्रद्धानत होना स्वाभाविक था। तब साप्ताहिक प्रवचन, गुरुदेव के निवास पर सांध्यकालीन साहित्य-चर्चा और नाट्य एवं संगीत के सांस्कृतिक कार्यक्रमों के माध्यम से उनका निकट-सान्निध्य निरंतर उपलब्ध होता रहा।

गुरुदेव चेहरे से बहुत गंभीर लगते थे, पर थे बड़े विनोदी स्वभाव के। उनके हृदय-स्पर्शी मधुर-व्यंग्य लोगों को हंसी के मारे लोट-पोट कर देते थे। अत्यधिक परिश्रम के कारण अस्वस्थ रहने पर गांधीजी ने उनसे कसम ले ली थी कि रोजाना दोपहर में भोजन के बाद एक घंटा सोया करेंगे। उन्हें दोपहर में सोने की आदत नहीं थी, फिर भी कमरे का दरवाजा बंद करके बैठ जाते थे। एक दिन एक साहब उनसे मिलने आये और पूछा कि "वे क्या कर रहे थे", तो गुरुदेव का जवाब था कि "गांधीजी का कर्जा चुका रहा था।" एक घटना और याद आ रही है, शांतिनिकेतन से विदा होने से पूर्व गुरुदेव के साथ हम कुछ मित्रों का ग्रुप-फोटो खिंचवाना तय हुआ, फोटोग्राफर ने फोकस-एडजस्ट करने में असहनीय समय ले लिया। हम स्वयं तो ऊब ही रहे थे, हमें यह डर भी था कि गुरुदेव नाराज होकर चले न जायें, पर बलिहारी गुरुदेव की कि उन्होंने 'अरे जानते नहीं ये शाही फोटोग्राफर हैं, आधे घंटे से पहले फोटो खींच लें, तो इनकी साख को बट्टा न लग जाये?' जैसे व्यंग्य-बाण चलाकर हंसते-हंसाते आधे घंटे से भी अधिक समय निकाल दिया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देश-विदेश के प्रख्यात राजनेता, साहित्यकार, शिक्षाविद्, कलाकार और मानवतावादी गुरुदेव से भेंट करने आये दिन शांतिनिकेतन में आते ही रहते थे और हमें उनके सम्पर्क में आने का अवसर उपलब्ध होता रहता था। जवाहरलाल नेहरू, सुभाष चन्द्र बोस, शरत चन्द्र चटर्जी, गोपीनाथ, उदय शंकर जैसे कुछ उल्लेखनीय नाम हैं, जो मेरे समय में शांतिनिकेतन में पधारे। दीनबंधु सी.एफ. एण्ड्र्यूज़ और बनारसीदास जी चतुर्वेदी तो आश्रम का अंग ही बन गये थे।

गुरुदेव विश्वभारती को विश्व-साहित्य और संस्कृति के अध्ययन का केन्द्र बनाना चाहते थे, उनके इसी प्रयास के फलस्वरूप मेरे अध्ययनकाल जुलाई, 1935 से मार्च, 1937 के दौरान ही वहाँ 'चीनी भवन' की स्थापना हो गयी थी और चीनी विद्वान् आचार्य तान यान शान के मार्गदर्शन में पढ़ने-पढ़ाने का काम शुरू हो गया था। गुरुदेव विश्वभारती में 'हिन्दी भवन' की स्थापना के लिये भी बहुत आतुर थे। 'विशाल भारत' के सम्पादक पं. बनारसीदास चतुर्वेदी के संयोजन में इस दिशा में जोरदार प्रयास शुरू हो गये। जनवरी 37 में राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष जवाहरलाल नेहरू बंगाल-विधानसभा के चुनाव-प्रचार के सिलसिले में जब शांतिनिकेतन आये, तो हमारा एक शिष्टमंडल इस कार्य में सहयोग प्रदान करने के लिए उनसे भी मिला था। मेरे समय में तो यह कार्य पूरा नहीं हो सका, पर गुरुदेव के जीवनकाल में ही शांतिनिकेतन में 'हिन्दी भवन' स्थापना की उनकी अभिलाषा भी पूरी हो गयी।

शांतिनिकेतन में उस समय विदेशों के अलावा देश के हर सूबे से छात्र पढ़ने के लिये पहुँचते थे। इंडोनेशिया के दो छात्र तो मेरे सहपाठी ही थे। उदयपुर के आज के प्रतिष्ठित चित्रकार गोवर्धन जोशी और कलाम, तब कलाभवन के छात्र थे, बहुचर्चित कन्नड़ फिल्म 'संस्कार' के निर्माता-निर्देशक आंध्र प्रदेश के टी.पी. रामारेड्डी भी मेरे सहपाठी थे। आज की प्रतिष्ठित लेखिका शिवानी (गौरा पांडे) तथा जयपुर की राजमाता गायत्री देवी (कूचबिहार की राजकुमारी आयशा) तब वहाँ स्कूल की छात्राएँ थीं।

गुरुदेव की साहित्य व कला-क्षेत्र की उपलब्धियाँ तो विश्वविख्यात हैं, पर राष्ट्रीय आन्दोलन में उनका प्रत्यक्ष व परोक्ष योगदान भी कम नहीं रहा। 13 अप्रैल, 1919 को जालियांवाला बाग के नृशंस नरमेध के विरोध में उन्होंने एक आक्रोशभरा पत्र लिखकर अपना 'सर' का खिताब वापस लौटा दिया था। किन्तु वे विश्वभारती को अपनी ठोस एवं सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि मानते थे, जहाँ वे अंतिम-सांस तक अपने जीवन के परम-लक्ष्य अंतर्राष्ट्रीय सद्भावना एवं भाईचारा, विश्वशांति और पूरब-पश्चिम को नजदीक लाने के प्रयास में जुटे रहे।

—(साभार, सजग समाचार, अगस्त (प्रथम) 1998, पृष्ठ 3-7)

❖❖

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैनधर्म और भगवान् महावीर के बारे में महापुरुषों के उद्गार

—प्रस्तुति : डॉ. सुदीप जैन

✪ **ब्राह्मण-धर्म पर जैनधर्म की छाप :** जैनधर्म अनादि है। गौतम बुद्ध महावीर स्वामी के शिष्य थे। चौबीस तीर्थंकरों में महावीर अन्तिम तीर्थंकर थे। यह जैनधर्म को पुन: प्रकाश में लाये, अहिंसाधर्म व्यापक हुआ। इनसे भी जैनधर्म की प्राचीनता मानी जाती है। पूर्वकाल में यज्ञ के लिये असंख्य पशु-हिंसा होती थी, इसके प्रमाण 'मेघदूत' काव्य तथा और ग्रन्थों से मिलते हैं। रन्तिदेव नामक राजा ने यज्ञ किया था, उसमें इतना प्रचुर पशुवध हुआ था कि नदी का जल खून से रक्त-वर्ण का हो गया था। उसी समय से उस नदी का नाम 'चर्मवती' प्रसिद्ध है। पशुवध से स्वर्ग मिलता है —इस विषय में उक्त कथा साक्षी है, परन्तु इस घोर हिंसा का ब्राह्मण-धर्म से विदाई ले जाने का श्रेय जैनधर्म को है। इस रीति से ब्राह्मण-धर्म अथवा हिन्दू-धर्म को जैनधर्म ने अहिंसा धर्म बनाया है। यज्ञ-यागादि कर्म केवल ब्राह्मण ही करते थे, क्षत्रिय और वैश्यों को यह अधिकार नहीं था और शूद्र बेचारे तो ऐसे बहुत विषयों में अभागे बनते थे। इसप्रकार मुक्ति प्राप्त करने की चारों वर्णों में एक-सी छूट न थी। जैनधर्म ने इस त्रुटि को भी पूर्ण किया है।

मुसलमानों का शक, इसाईयों का शक, विक्रम शक, इसीप्रकार जैनधर्म में महावीर स्वामी का शक (सन्) चलता है। शक चलाने की कल्पना जैनी भाईयों ने ही उठाई थी। आजकल यज्ञों में पशुहिंसा नहीं होती। ब्राह्मण और हिन्दूधर्म में मांस-भक्षण, और मदिरा-पान बन्द हो गया, सो यह भी जैनधर्म का ही प्रताप है। जैनधर्म की छाप ब्राह्मण-धर्म पर पड़ी। *—लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक* ◆

✪ **अहिंसा के अवतार भगवान् महावीर :** "मेरा विश्वास है कि बिना धर्म का जीवन बिना सिद्धान्त का जीवन है और बिना सिद्धान्त का जीवन वैसा ही है, जैसा कि बिना पतवार का जहाज। जहाँ धर्म नहीं वहाँ विद्या नहीं, और नीरोगता भी नहीं। सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं और 'अहिंसा परमोधर्म:' से बढ़कर कोई आचार नहीं है। जिस धर्म में जितनी ही कम हिंसा है, समझना चाहिये कि उस धर्म में उतना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ही अधिक सत्य है।

भगवान् महावीर अहिंसा के अवतार थे, उनकी पवित्रता ने संसार को जीत लिया था। महावीर स्वामी का नाम इस समय यदि किसी भी सिद्धान्त के लिए पूजा जाता है, तो वह अहिंसा है। प्रत्येक धर्म की उच्चता इसी बात में है कि उस धर्म में अहिंसा-तत्त्व की प्रधानता हो। अहिंसा-तत्त्व को यदि किसी ने अधिक से अधिक विकसित किया है, तो वे महावीर स्वामी थे।" *—महात्मा गांधी* ◆

✪ **जैनधर्म की विशेष-सम्पत्ति :** मैं अपने को धन्य मानता हूँ कि मुझे महावीर स्वामी के प्रदेश में रहने का सौभाग्य मिला है। अहिंसा जैनों की विशेष-सम्पत्ति है। जगत् के अन्य किसी भी धर्म में अहिंसा-सिद्धान्त का प्रतिपादन इतनी सफलता से नहीं मिलता। *—डॉ. राजेन्द्र प्रसाद* ◆

✪ **भगवान् महावीर का कल्याण-मार्ग :** यदि मानवता को विनाश से बचाना है और कल्याण के मार्ग पर चलता है, तो भगवान् महावीर के सन्देश को और उनके बताए हुए मार्ग को ग्रहण किए बिना और कोई रास्ता नहीं।*—डॉ. श्री राधाकृष्णन जी* ◆

✪ **भगवान् महावीर का त्याग :** आशा है कि भगवान् महावीर द्वारा प्रणीत सेवा और त्याग की भावना का प्रचार करने से सफलता होगी।*—पं. जवाहरलाल नेहरू* ◆

✪ **अहिंसा वीर पुरुषों का धर्म है :** जैनधर्म पीले कपड़े पहनने से नहीं आता। जो इन्द्रियों को जीत सकता है, वही सच्चा जैन हो सकता है। अहिंसा वीर पुरुषों का धर्म है। कायरों का नहीं। जैनों को अभिमान होना चाहिए कि कांग्रेस उनके मुख्य सिद्धान्त का अमल समस्त भारतवासियों को करा रही है। जैनों को निर्भय होकर त्याग का अभ्यास करना चाहिए। *—सरदार वल्लभ भाई पटेल* ◆

✪ **संसार के पूज्य भगवान् महावीर :** भगवान् महावीर एक महान् आत्मा हैं, जो केवल जैनियों के लिये ही नहीं, बल्कि समस्त संसार के लिये पूज्य हैं। आजकल के भयानक समय में भगवान् महावीर की शिक्षाओं की बड़ी जरूरत है। हमारा कर्त्तव्य है कि उन उनकी याद को ताजा रखने के लिए उन के बताये हुए मार्ग पर चलें।

—जी.बी. मावलंकार, स्पीकर-लोकसभा ◆

✪ **भगवान् महावीर का उपदेश शान्ति का सच्चा मार्ग है :** भगवान् महावीर का संदेश किसी खास कौम या फिरके के लिये नहीं है, बल्कि समस्त संसार के लिये है। अगर जनता महावीर स्वामी के उपदेश के अनुसार चले, तो वह अपने जीवन को आदर्श बना ले। संसार में सच्चा सुख और शांति उसी सूरत में प्राप्त हो सकती है, जबकि हम उनके बतलाये हुए मार्ग पर चलें। *—श्री राजगोपालाचार्य* ◆

✪ **जैनधर्म का प्रभाव :** जैनधर्म और संस्कृति प्राचीन है। भारतवासी जैनधर्म के नेताओं तीर्थंकरों को मुनासिब धन्यवाद नहीं दे सकते। जैनधर्म का हमारे किसी न किसी विभाग में राष्ट्रीय जीवन पर बहुत बड़ा प्रभाव है। जैनधर्म के साहित्यिक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ग्रन्थों की स्वच्छ और सुन्दर भाषा है। साहित्य के साथ-साथ विशेषरूप से जैनधर्म ने आकर्षण किया है, जो मानव को अपनी ओर खींचता है। जैनधर्म-संबंधी कला के नमूने देखकर आश्चर्य होता है। जैनधर्म ने सिद्ध कर दिया है कि लोक और परलोक के सुख की प्राप्ति अहिंसाव्रत से हो सकती है।

—श्री प्रकाश जी, मंत्री भारत सरकार ◆

✪ **महान् तपस्वी भगवान् महावीर :** भगवान् महावीर एक महान् तपस्वी थे। जिन्होंने सदा सत्य और अहिंसा का प्रचार किया। इनकी जयन्ती का उद्देश्य मैं यह समझता हूँ कि इनके आदर्श पर चलने और उसे मज़बूत बनाने का यत्न किया जाये।

—राजर्षि श्री पुरुषोत्तमदास जी टण्डन ◆

✪ **विश्व शांति के संस्थापक :** मैं भगवान् महावीर को परम-आस्तिक मानता हूँ। श्री भगवान् महावीर ने केवल मानव-जाति के लिये ही नहीं, पर समस्त प्राणियों के विकास के लिये अहिंसा का प्रचार किया। उनके हृदय में प्राणीमात्र के कल्याण की भावना सदैव ज्वलंत थी। इसीलिये वह विश्वकल्याण का प्रशस्त-मार्ग स्वीकार कर सके। मैं दृढ़ता के साथ कह सकता हूँ कि उनके अहिंसा-सिद्धान्त से ही विश्व कल्याण तथा शान्ति की स्थापना हो सकती है। *—काका कालेलकर जी* ◆

✪ **महान् विजेता :** महावीर स्वामी ने जन्म-मरण की परम्परा पर विजय प्राप्त की थी। उनकी शिक्षा विश्व-मानव के कल्याण के लिये थी। अगर आपकी शिक्षा संकीर्ण रहती, तो जैनधर्म अरब आदि देशों तक न पहुँच पाता। *—आचार्य श्री नरेन्द्रदेव जी* ◆

✪ **प्रेम के उत्पादक :** लोग कहते हैं कि अहिंसा-देवी नि:शस्त्र है, मैं कहता हूँ यह गलत ख्याल है। अहिंसा देवी के हाथ में अत्यन्त शक्तिशाली शस्त्र है। अहिंसारूपी शस्त्र प्रेम के उत्पादक होते हैं, संहारक नहीं। *—आचार्यश्री विनाबा भावे जी* ◆

✪ **भगवान् महावीर का प्रभाव :** रिश्वत, बेईमानी, अत्याचार अवश्यनष्ट हो जाएँ, यदि हम भगवान् महावीर की सुन्दर और प्रभावशाली शिक्षाओं का पालन करें। बजाय इसके कि हम दूसरों को बुरा कहें और उनमें दोष निकालें। अगर भगवान् महावीर के समान हम सब अपने दोषों और कमजोरियों को दूर कर लें, तो सारा संसार खुद-ब-खुद सुधर जाए। *—श्री लालबहादुर शास्त्री* ◆

✪ **संसार के कल्याण का मार्ग जैनधर्म :** जैनियों ने लोकसेवा की भावना से भारत में अपना एक अच्छा स्थान बना लिया है। उनके द्वारा देश में कला और उद्योग की काफी उन्नति हुई है। उनके धर्म और समाजसेवा के कार्य सार्वजनिक हित की भावना से होते रहे हैं और उनके कार्यों से जनता के सभी वर्गों ने लाभ उठाया है। जैनधर्म देश का बहुत प्राचीन धर्म है। इसके सिद्धान्त महान् हैं और उन सिद्धान्तों का मूल्य उद्धार, अहिंसा और सत्य है। गांधी जी ने अहिंसा और सत्य के जिन सिद्धान्तों को लेकर जीवनभर कार्य किया, वही सिद्धान्त जैनधर्म की प्रमुख-वस्तु है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैनधर्म के प्रतिष्ठापकों तथा महावीर स्वामी ने अहिंसा के कारण ही सबको प्रेरणा दी थी। जैनियों की ओर से कितनी ही संस्थाएँ खुली हुई हैं, उनकी विशेषता यह है कि सब ही बिना किसी भेदभाव के उनसे लाभ उठाते हैं, यह उनकी सार्वजनिक सेवाओं का ही फल है।

जैनधर्म के आदर्श बहुत ऊँचे हैं। उनसे ही संसार का कल्याण हो सकता है। जैनधर्म तो करुणा-प्रधान धर्म है। इसलिये जैन चींटी तक की भी रक्षा करने में प्रयत्नशील है। दया के लिये हर प्रकार का कष्ट सहन करते हैं। उनमें मनुष्यों के प्रति असमानता के भाव नहीं हो सकते।

मैं आशा करता हूँ कि देश और व्यापार में जैनियों का जो महत्त्वपूर्ण भाग है, वह सदा रहेगा।

—श्री गोविन्दवल्लभ पंत ◆

✪ **जैन विचारों की छाप :** भारतीय संस्कृति के संवर्द्धन से उन लोगों ने उल्लेखनीय भाग लिया है, जिनको जैनशास्त्रों से स्फूर्ति प्राप्त हुई थी। वास्तुकला, मूर्तिकला, वाङ्मय सब पर ही जैन-विचारों क़ी गहरी छाप है। जैन विद्वानों और श्रावकों ने जिस प्राणपण से, अपने शास्त्रों की रक्षा की थी वह हमारे इतिहास की अमर कहानी है। हमें जैन-विचारधारा का परिचय करना ही चाहिये।

—डॉ. सम्पूर्णानन्द जी ◆

✪ **जैन इतिहास की आवश्यकता :** प्राचीन भारतीय इतिहास का जो पता आजकल चल रहा है, उसमें जैन-राजाओं, राजमन्त्रियों और सेनापतियों आदि के जबरदस्त कारनामे मिलते जा रहे हैं, अब ऐतिहासिक विद्वानों के लिये जैन-इतिहास की जरूरत पहिले से बहुत बढ़ गई है।

—प्रो. सत्यकेतु विद्यालंकार ◆

✪ **अहिंसा के मान् प्रचारक भगवान् महावीर :** भगवान् महावीर ने पूरे 12 वर्ष के तप और त्याग के बाद अहिंसा का संदेश दिया। उस समय हिंसा का अधिक जोर था। हर घर में यज्ञ होता था। यदि उन्होंने अहिंसा का संदेश न दिया होता, तो आज भारत में अहिंसा का नाम नहीं लिया जाता।

—बौद्धभिक्षु प्रो. धर्मानन्द जी ◆

✪ **देश की रक्षा करने वाले जैनवीर :** जैनधर्म में दयाप्रधान होते हुए भी यह लोग वीरता में दूसरी जातियों से पीछे नहीं रहे। राजस्थान में मन्त्री आदि अनेक ऊँची पदवियों पर सैकड़ों वर्षों तक अधिक जैनी ही रहे हैं, और उन्होंने अहिंसा धर्म को निभाते हुए वीरता के ऐसे अनेक कार्य किए हैं जिनसे इस देश की प्राचीन उदार कला की उत्तमता की रक्षा हुई। उन्होंने देश की आपत्ति के समय महान् सेवाएँ कीं और उसका गौरव बढ़ाया।

—महामहोपाध्याय रायबहादुर पं. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ◆

✪ **राष्ट्रीय, सार्वभौमिक तथा लोकप्रिय जैनधर्म :** जैनधर्म किसी ख़ास जाति या

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्प्रदाय का धर्म नहीं है; बल्कि यह अन्तर्राष्ट्रीय, सार्वभौमिक तथा लोकप्रिय धर्म है। जैन तीर्थंकरों की महान् आत्माओं ने संसार के राज्यों के जीतने की चिन्ता नहीं की थी, राज्यों को जीतना कुछ ज्यादा कठिन नहीं है, जैन-तीर्थंकरों का ध्येय राज्य जीतने का नहीं है; बल्कि स्वयं पर विजय प्राप्त करने का है। यही एक महान् ध्येय है, और मनुष्य जीवन की सार्थकता इसी में है। लड़ाइयों से कुछ देर के लिये शत्रु दब जाता है, दुश्मनी का नाश नहीं होता। हिंसक युद्धों से संसार का कल्याण नहीं होता। यदि आज किसी ने महान् परिवर्तन करके दिखाया है, तो वह अहिंसा-सिद्धान्त ही है। अहिंसा-सिद्धान्त की खोज और प्राप्ति संसार के समस्त खोजों और प्राप्तियों से महान् है।

यह (Law of Gravitation) मनुष्य का स्वभाव है नीचे की ओर जाना। परन्तु जैन-तीर्थंकरों ने सर्वप्रथम यह बताया कि अहिंसा का सिद्धान्त मनुष्य को ऊपर उठाता है।

आज के संसार में सबका यही मत है कि अहिंसा-सिद्धान्त का महात्मा बुद्ध ने आज से 2500 वर्ष पहले प्रचार किया। किसी इतिहास के जानने वाले को इस बात का बिल्कुल ज्ञान नहीं है कि महात्मा बुद्ध से करोड़ों वर्ष पहले एक नहीं बल्कि अनेक जैन-तीर्थंकरों ने इस अहिंसा-सिद्धान्त का प्रचार किया है। जैनधर्म बुद्धधर्म से करोड़ों वर्ष पहिले का है। मैंने प्राचीन जैन-क्षेत्रों और शिलालेखों के सलाइड्ज तैयार करके इस बात को प्रमाणित करने का यत्न किया है कि जैनधर्म प्राचीन धर्म है, जिसने भारत-संस्कृति को बहुत कुछ दिया; परन्तु अभी तक संसार की दृष्टि में जैनधर्म को महत्त्व नहीं दिया गया। उनके विचारों में यह केवल बीस लाख आदमियों का एक छोटा-सा धर्म है। हालाँकि जैनधर्म एक विशाल धर्म है और अहिंसा पर तो जैनियों को पूर्ण-अधिकार प्राप्त है।

—डॉ. श्री कालीदास नाग वाइस चांसलर कलकत्ता यूनिवर्सिटी ◆

✪ **जार्ज बर्नाडशा की जैनी होने की इच्छा :** जैनधर्म के सिद्धान्त मुझे अत्यन्त-प्रिय हैं। मेरी आकांक्षा है कि मृत्यु के पश्चात् मैं जैन-परिवार में जन्म धारण करूँ।

—जार्ज बर्नाडशा ◆

✪ **जैनधर्म इतिहास का खजाना :** जैनधर्म के प्राचीन स्मारकों से भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास की बहुत ज़रूरी और उत्तम-सामग्री प्राप्त होती है। जैनधर्म प्राचीन-सामग्री का भरपूर खजाना है। *—डॉ. जे.जी. बुल्हर* ◆

✪ **जैनधर्म गुणों का भंडार :** जैनधर्म अनन्तानन्त गुणों का भंडार है, जिसमें बहुत ही उच्चकोटि का तत्त्व-फिलॉस्फी भरा हुआ है। ऐतिहासिक, धार्मिक और साहित्यिक तथा भारत के प्राचीन कथन जानने की इच्छा रखनेवाले विद्वानों के लिए जैनधर्म का स्वाध्याय बहुत लाभदायक है। *—प्रो. (डॉ.) मैक्समूलर* ◆

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

✪ **जैन-इतिहास स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य है :** भारतवर्ष का अध:पतन जैनधर्म के अहिंसा-सिद्धान्त के कारण नहीं हुआ था; बल्कि जब तक भारतवर्ष में जैनधर्म की प्रधानता रही थी, तब तक उसका इतिहास स्वर्णाक्षरों में लिखे जाने योग्य है।

—रेवरेन्ज जे. स्टीवेन्सन महोदव ◆

✪ **जैनधर्म से पृथ्वी स्वर्ग हो सकती है :** जैनधर्म के सिद्धान्तों पर मुझे दृढ़ विश्वास है कि यदि सब जगह उनका पालन किया जाए, तो वह इस पृथ्वी को स्वर्ग बना देंगे। जहाँ-तहाँ शान्ति और आनन्द ही आनन्द होगा।

—डॉ. चारो लोटा क्रौज, बर्लिन यूनिवर्सिटी ◆

✪ **यूरोपियन फ्लॉसफर जैनधर्म की सचाई पर नतमस्तक हैं :** मैंने जैनधर्म को क्यों पसन्द किया? जैनधर्म हमें यह सिखाता है कि अपनी आत्मा को संसार के झंझटों से निकलकर हमेशा के लिए उनसे निज़ात किसप्रकार हासिल का जाए। जैन-असूलों ने मेरे हृदय को जीत लिया और मैंने जैन फ्लॉस्फी का स्वाध्याय शुरू कर दिया है। आजकल यूरोपियन फ्लासफर जैन फ्लॉस्फी के क़ायल हो रहे हैं, और जैनधर्म की सच्चाई के आगे मस्तक झुका रहे हैं।

—Prof. (Dr.) Von Helmuth Von Glasenapp, *Berlin University* ◆

✪ **जैनधर्म की प्राचीनता :** जैनियों के 22वें तीर्थंकर नेमिनाथ ऐतिहासिक पुरुष माने गए हैं। भगवद्गीता के परिशिष्ट में श्रीयुत वरवे इसे स्वीकार करते हैं कि नेमिनाथ श्रीकृष्ण के भाई थे। जबकि जैनियों के 22वें तीर्थंकर श्रीकृष्ण के समकालीन थे, तो शेष इक्कीस तीर्थंकर श्रीकृष्ण के कितने वर्ष पहले होने चाहिए? —यह पाठक अनुमान कर सकते हैं।

—डॉ. फुहरर ◆

✪ **जैनधर्म की प्राचीनता :** यूरोपियन ऐतिहासिक विद्वानों ने जैनधर्म का भली प्रकार स्वाध्याय नहीं किया, इसलिये उन्होंने महावीर स्वामी को जैनधर्म का स्थापक कहा है। हालाँकि यह बात स्पष्टरूप से सिद्ध हो चुकी है कि वे अन्तिम चौबीसवें तीर्थंकर थे। इनसे पहले अन्य तेईस तीर्थंकर हुए, जिन्होंने अपने-अपने समय में जैनधर्म का प्रचार किया।

—डॉ. एन.ए. बीसंट ◆

✪ **जैनधर्म ही सच्चा और आदि धर्म है :** नि:सन्देह जैनधर्म ही पृथ्वी पर एक सच्चा धर्म है और यही मनुष्य मात्र का आदि-धर्म है। *—मि. आवे जे.ए. डवाई मिशनरी* ◆

✪ **अलौकिक महापुरुष भगवान् महावीर :** भगवान् महावीर अलौकिक महापुरुष थे। वे तपस्वियों में आदर्श, विचारकों में महान्, आत्म-विकास में अग्रसर दार्शनिक और उस समय की प्रचलित सभी विद्याओं में पारंगत थे। उन्होंने अपनी तपस्या के बल से उन विद्याओं को रचनात्मक रूप देकर जनसमूह के समक्ष उपस्थित किया था। छ: द्रव्य—धर्मास्तिकाय (Fulcrum of Motion), अधर्मास्तिकाय (Fulcrum of Stationariness), काल (Time), आकाश (Space), पुद्गल (Matter) और जीव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(Jiva) और उनका स्वरूप तत्त्व विद्या (Ontology), विश्वविद्या (Kosomology) दृश्य और अदृश्य जीवों का स्वरूप जीवविद्या (Biology) बताया। चैतन्यरूप आत्मा का उत्तरोत्तर आध्यात्मिक विकासस्वरूप मानसशास्त्र (Psychology) आदि विद्याओं को उन्होंने रचनातमक रूप देकर जनता के सम्मुख उपस्थित किया। इसप्रकार वीर केवल साधु अथवा तपस्वी ही नहीं थे, बल्कि वे प्रकृति के अभ्यासक थे और उन्होंने विद्वत्तापूर्ण निर्णय दिया। *—डॉ. अनेस्ट लायमेन जर्मनी* ◆

✪ **जैनधर्म की विशेषता** : मैं अपने देशवासियों को दिखलाऊँगा कि कैसे उत्तम तत्त्व और विचार जैनधर्म में हैं। जैन साहित्य बौद्धों की अपेक्षा बहुत ही बढ़िया है। मैं जितना-जितना अधिक जैनधर्म व जैन साहित्य-ज्ञान प्राप्त करता जाता हूँ, उतना-उतना ही मैं उनको अधिक प्यार करता हूँ।

—जर्मनी के महान् विद्वान् डॉ. जोन्ह सहर्टेल ◆

—(आधारस्रोत : विश्वशांति के अग्रदूत वर्द्धमान महावीर,
सं.—श्री दिगम्बर दास जैन, प्र.सं. 1954ई.)

तीन हजार से भी अधिक बोलियां बोलते हैं आदिवासी

देश के विभिन्न भागों में बसे आदिवासी क्षेत्रों में तीन हजार से भी अधिक बोलियां बोली जाती हैं। आदिवासियों द्वारा बोली जाने वाली यह बोलियां प्रकृति के बेहद करीब हैं। इसलिए इन बोलियों के कई शब्दों को जंगली जानवर तक समझते हैं। कई आदिवासी तो जानवरों की आवाज से ही समझ लेते हैं कि अमुक जानवर अपने दल से बिछड़ गया है या कोई जानवर बीमार है, व किसी पीड़ा की चपेट में है।

'जनजाति-कार्य-मंत्रालय' ने इन आदिवासी बोलियों को संरक्षित करने का बीड़ा उठाया है और विभिन्न राज्यों में स्थित 14 आदिवासी-अनुसंधान-संस्थान इस काम में जुट गये हैं तथा अनुसंधान-कार्य करके इन भाषाओं की शब्दावलियों को संरक्षित कर रही है। राजस्थान के 'मानिकलाल आदिम-जाति शोध-संस्थान' ने आदिवासियों की भाषा व संस्कृति पर 50,000 से अधिक पुस्तकें संग्रहीत की हैं। इस पुस्तकालय में अभिलेखों के अतिरिक्त देश की विभिन्न जनजातियों के बारे में भी सूचनाएँ उपलब्ध हैं। इसे अब कम्प्यूटरीकृत करने के प्रयास चल रहे हैं। इसीप्रकार केरल, महाराष्ट्र, गुजरात, आन्ध्र प्रदेश, असम, तमिलनाडु आदि राज्यों में भी जनजातियों की मौखिक-परम्पराओं को भी अभिलेखों के माध्यम से संरक्षित किया जा रहा है। इस दिशा में शब्दकोश, संदर्भ-ग्रंथ, व्याकरण-पुस्तकें एवं बोलचाल के लिए निर्देशिका प्रकाशित की गई है, लेकिन ये अनुसंधान अभी नाकाफी हैं। 'महाराष्ट्र आदिवासी अनुसंधान-संस्थान' द्वारा फील्ड में काम करने वाले कर्मचारियों के लिए बोलचाल की निर्देशिका तैयार की गई है। ◆◆

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भगवान् महावीर की जन्मस्थली : कुण्डपुर (वासोकुण्ड)

—डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल

1. राष्ट्रसंत आचार्य विद्यानन्द जी मुनिराज एवं अन्य अनेक दिगम्बर/श्वेताम्बर आचार्यों/मुनिराजों के साथ ही आचार्यश्री विद्यासागर जी मुनिराज के प्रमुख शिष्य मुनि श्री प्रमाणसागर जी ने अपनी कृति 'जैनधर्म और दर्शन' में तीर्थंकर महावीर की जन्मस्थली 'कुंडपुर' निरूपित किया है। उनके अनुसार 'कुंडपुर' प्राचीन भारत में व्रात्य क्षत्रियों के प्रसिद्ध 'वज्जिसंघ' के 'वैशाली गणतंत्र' के अंर्तगत था।........ उनके पिता सिद्धार्थ वहाँ के प्रधान थे। वे ज्ञातृवंशी कश्यपगोत्रीय क्षत्रिय थे तथा माता त्रिशला उक्त संघ के अध्यक्ष लिच्छिवि-नरेश चेटक की पुत्री थी।..... नाथवंशी होने के कारण महावीर को बौद्धग्रंथों में नातपुत्त (नाथपुत्र) भी कहा गया है (प्रकाशन 1998, पृष्ठ 44-45)।

आर्यिका चंदनामती जी प्रज्ञाश्रमणी ने भी अपने आलेख 'भगवान् महावीर के दश पूर्व भव' में महावीर का जन्मस्थल 'विदेह' देश के 'कुण्डपुर' नगर को मान्य किया है। आलेख में 'षण्ड' नामक वन 'ज्ञातृवन' में दीक्षा और प्रथम आहार मूलग्राम में राजाकूल के यहाँ होने का उल्लेख है (महावीर स्मारिका 2001-02, राजेन्द्र चन्द्र कैलाशचन्द्र जैन चेरिटेबल ट्रस्ट, 30 चावड़ी बाजार, दिल्ली 6, पृष्ठ 24)। आचार्य गुणभद्रकृत 'उत्तर पुराण' में महावीर का जन्मस्थल 'विदेह' देश का 'कुण्डपुर' (श्लोक 251-252) एंव प्रथम आहार-स्थल मूलग्रामपुर के राजा कूल का महल (श्लोक 318-322) निरूपित किया है। आचार्य वीरसेन ने 'धवला' टीका पुस्तक 9, पृष्ठ 121 एवं गाथा 28 पृष्ठ 122 में मूलत: 'कुंडपुर' लिखा है (धवला— सोलापुर, सन् 1990 संस्करण)। इसप्रकार विद्वान् मनीषियों/शोधार्थियों एवं जैनाचार्यों ने भगवान् महावीर का जन्मस्थल कुण्डलपुर या वैशाली न मानकर कुण्डपुर को स्वीकार किया है, जो वर्तमान में 'बासोकुण्ड' के नाम से प्रसिद्ध है।

भगवान् महावीर के 2500वें निर्वाण-महोत्सव-काल में दिल्ली में विराजित जैनाचार्य शिरोमणी आचार्यश्री देशभूषण जी मुनिराज के तत्त्वावधान/मार्गदर्शन में सन् 1974 में 'भगवान् महावीर और उनका तत्त्वदर्शन' नामक वृहत्काय ग्रंथ प्रकाशित हुआ। इसकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रस्तावना श्री पं. सुमेरु चन्द्र जी दिवाकर सिवनी द्वारा लिखी गयी। इस ग्रंथ की सम्पूर्ण विषयवस्तु कुण्डपुर-वैशाली को समर्पित है। इसमें बाबू डॉ. कामता प्रसाद की वर्ष 1929 एवं 1932 में प्रकाशित पुस्तकें क्रमश: 'भगवान् महावीर और महात्मा बुद्ध' तथा 'दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनि', नवलशाहकृत 'वर्द्धमानचरित्र', 'गौतम चरित्र' जैसी शोध-खोज भरी रचनाएँ अविकल प्रकाशित हैं। इन सभी में ठोस-प्रमाणों-सहित भगवान् महावीर की जन्मस्थली बासोकुण्ड-बसाड़ (कुण्डपुर-वैशाली) सिद्ध की है। प्रस्तावना-लेखक श्री दिवाकर जी एवं आचार्यश्री एकमतेन इससे सहमत थे, अन्यथा इसका प्रकाशन सम्भव भी नहीं था। जन्मस्थली की खोज में किन-किन विद्वान् मनीषियों का योगदान था, इसका विवरण 'प्राकृतविद्या', जुलाई-सितम्बर '02, 'दिशाबोध' अक्तूबर '02, 'जैनसन्देश' एवं 'समन्वयवाणी' अक्तूबर '02 अंकों में देखा जा सकता है।

3. जिनेश्वरी-दीक्षा धारणकर कुछ नया कीर्तिमान करने की मंगलभावना से आर्यिका चंदनामती जी हस्तिनापुर का आलेख 'भगवान् महावीर की जन्मभूमि-कुण्डलपुर' 'अर्हत्वचन' अप्रैल-जून '01 एवं अन्य पत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ। आलेख में प्रज्ञाश्रमणी जी ने नवीन शोध को कुठाराघाती बताते हुए दिगम्बर-जैनग्रन्थों एवं अन्य अपुष्ट-चर्चाओं के आधार पर भगवान् महावीर की जन्मस्थली कुंडपुर (नालंदा) सिद्ध किया। उनके तर्कों की समीक्षा आगे की गयी है। इस आलेख के प्रकाशन के बाद जैन-पत्रकारिता-जगत्, जैन-विद्वान्, संस्थाएँ एवं साधुवर्ग सभी में भूचाल-सा आ गया और अपने-अपने पक्ष के खण्डन-मण्डन-हेतु अपनी अनेकान्तमयी प्रज्ञा का असंगत-तर्क, सम्मान, भ्रम-निर्माण, आगम-परिवर्तन आदि में अनेक प्रकार से हुआ और हो रहा है। लगता है जैन-जगत् समस्या-विहीन हो गया है और एकमात्र समस्या भूगोल के गर्त में समाए विद्वेषियों द्वारा जमींदोज किये 'कुण्डपुर' को खोज निकालना ही शेष रह गयी है, और वह भी मात्र अपनी पूर्व-निर्धारित-धारणानुसार।

4. पूर्व में सर्वमान्य और स्व-मान्य कुण्डपुर-वैशाली (वासोकुण्ड) के विरुद्ध तर्क इसप्रकार हैं :— यह विदेशियों की उपज है, जिन्हें जैन-आगम एवं परम्परा का ज्ञान नहीं होता। वे अप्रमाणिक भी हैं। शोध-खोज का आधार दिगम्बर-जैन-साहित्य से भिन्न श्वेताम्बर, बौद्ध एवं अन्य साहित्य है। उनको स्वीकारने से हमें उनकी अन्य-मान्यताएँ भी स्वीकारना होंगी, जो अनेक समस्याओं को जन्म देगी। अत: निर्णय दिगम्बर-जैन-आगम के आधार पर किया जाना चाहिये। वैशाली (नानी-नाना) के निकट 'कुण्डपुर' मानने से सिद्धार्थ 'घरजमाई' जैसे तुच्छ हो जावेंगे। तीर्थंकर का जन्म 'ग्राम' संज्ञामूलक स्थान में (कुण्डग्राम) कैसे हो सकता है। एक लाख योजन का ऐरावत हाथी कहाँ भ्रमण करेगा? कुण्डपुर की मान्यता स्थापना-निक्षेप एवं परम्परा श्रद्धा का विषय है। वैशाली-कुण्डपुर स्वीकारने से आगम-विरुद्ध विसंगतियाँ उत्पन्न होंगी। वैशाली की खोज

48.23.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सिन्धु-देश में होना चाहिये आदि-आदि।

5. वैशाली या कुण्डलपुर (बडागांव)-नालंदा महावीर की जन्मस्थली नहीं है, इसकी समीक्षा करने के पूर्व यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि दिगम्बर-जैन-आगम-ग्रन्थों में सर्वत्र भगवान् महावीर की जन्मस्थली 'विदेह' देश के 'कुण्डपुर' को स्वीकार किया है। किन्हीं ग्रन्थों में 'कुण्डपुरं' लिखा है। एक में 'कुण्डग्राम' एवं एक में 'कुण्डले' लिखा है। किसी भी ग्रंथ में कुण्डलपुर, कुण्डलपुर-नालंदा या वैशाली को जन्मस्थली नहीं माना। यह भी उल्लेखनीय है कि तत्कालीन राजनैतिक मानचित्र के अनुसार 'कुण्डपुर' वैशाली-गणराज्य के अंतर्गत था, जबकि 'नालंदा' राजगृही नगर का अंग होकर मगध-राज्य के अंतर्गत था। 'त्रिषष्टिशलाका चरित्र' के अनुसार 'राजगृह' के 'नालंदा पाडा' में महावीर ने दूसरा वर्षावास किया था और वहाँ से 'कोल्लाग ग्राम' विहार किया (पर्व 10, सर्ग 3, श्लोक 370-372)। भौगोलिकरूप से नालंदा के निकट कुण्डलपुर का अस्तित्व कभी नहीं रहा। वर्तमान में नालंदा के निकट बड़ागांव में परम्परागतरूप से कुण्डलपुर की मान्यता हमने की थी, जो शोध-खोज से पुष्ट नहीं हुई। जबकि कुण्डपुर (वासोकुण्ड) में दो बीघा पवित्र भूमि सदियों से बिना जुती 'अ-हल्ल' नाम से छोड़ी हुई है। इस भूमि के मध्य में प्रतिवर्ष दीपावलीं के दिन स्थानीय जन श्रद्धापूर्वक दीपक जलाकर महावीर की पवित्र आत्मा का स्मरण करते हैं। भू-स्वामी ने यह भूमि भगवान् महावीर के स्मारक-निर्माण हेतु नि:शुल्क समर्पित की है। कुण्डपुर-नालंदा को जन्मभूमि माननेवाले पक्ष का कर्त्तव्य है कि वह अपने कथनों की पुष्टि सप्रमाण सिद्ध करे। ऐसा होने पर वह अपने पक्ष को पुष्ट कर सकेगा, अन्यथा आधारहीन-दोंषारोपण और चरित्रहनन से क्या सिद्ध होगा, मात्र सामाजिक-विद्वेष पैदा करने और अपनी मनोवृत्ति के प्रदर्शन के।

6. उक्त परिप्रेक्ष्य में आर्यिका चन्दनामती जी, पं. नरेन्द्र प्रकाश जी, पं. शिवचरण लाल जी, डॉ. अभय प्रकाश जी एवं अन्यों द्वारा उठाये गये बिन्दुओं की संक्षिप्त-विचारणा इसप्रकार है—

आर्यिका श्री चंदनामती जी :— प्रज्ञाश्रमणी जी द्वारा जो आगम-प्रमाण दिये हैं, 'धवला' को छोड़कर, उन सभी में 'विदेह-कुण्डपुर' का उल्लेख है। 'तिलोयपण्णत्ति' में 'कुंडलेवीरो' लिखा है। कहीं भी 'नालंदा-कुण्डलपुर' का उल्लेख नहीं है। 'धवला' पुस्तक 9, पृष्ठ 121 गद्य में बदल दिया ('तीर्थंकरवाणी', अप्रैल '02, पृष्ठ 14)। यह किस उद्देश्य एवं अधिकार से उन्होंने किया, इसकी जानकारी अपेक्षित है। महाकवि पुष्पदंत ने 'वीरजिणिंदचरिउ' में 'कुंडउरि राउ सिद्धत्थ सहित्थु' कहकर कुंडपुर की पुष्टि की है, न कि कुण्डलपुर की (1/6, पृ.10)। प्रज्ञाश्रमणी जी ने हिन्दी-अर्थ लिखते समय कुण्डलपुर के साथ नालंदा भी अपनी ओर से जोड़ दिया। किसी सत्यमहाव्रतधारी ने अभी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तक मूलगाथा/पद्य-लेखन और उसके अर्थ में ऐसी विकृति/अवर्णवाद नहीं किया। आगम-परिवर्तन का यह नया प्रयोग है। समग्ररूप से प्रज्ञाश्रमणी जी ने कुंडपुर को कुण्डलपुर-नालंदा बनाकर कहा कि 'धवला' के प्रमाण से कौन सहमत नहीं होगा? उनके समर्थक विद्वान् श्री पं. शिवचरणलाल जी एवं अन्यों ने भी अपने आलेखों में 'कुंडपुर' के स्थान पर 'कुण्डलपुर' लिखकर भ्रम पैदा किया। विद्वानों और समाज को इसके गर्भित उद्देश्य को समझकर संस्कृति/साहित्य की रक्षा-सुरक्षा करना अपेक्षित है।

दूसरे, प्रज्ञाश्रमणी जी ने गणिनी प्रमुख श्री ज्ञानमती जी के माध्यम से यह धारणा बनाने का प्रयास किया कि सन् 1974 में आचार्यश्री देशभूषण जी, आचार्यश्री धर्मभूषण जी एवं पंडितप्रवर सुमेरु चन्द्र दिवाकर आदि के मध्य चर्चा में सभी ने कुण्डलपुर को स्वीकार किया, वैशाली किसी को इष्ट नहीं थी। यह चर्चा कब, कहाँ और कैसे हुई, इसका कोई प्रमाण नहीं है। फिर जैसा कि ऊपर पैरा 2 में दर्शाया है कि आचार्यश्री देशभूषण जी द्वारा एक हजार पृष्ठ के ग्रंथ 'भगवान् महावीर और उनका तत्त्वदर्शन' में कुण्डपुर (वासोकुण्ड) को जन्मस्थली सिद्ध/व्यक्त की हो, वहाँ निजी मौखिक चर्चा में उसको विपरीत-धारणा व्यक्त करना संदिग्ध और हास्यास्पद है। वैशाली को, मात्र वैशाली को कभी किसी ने जन्मभूमि नहीं माना और मानने का प्रश्न भी नहीं उठता। गणिनी-प्रमुख के नाम से उक्तानुसार भ्रम पैदा करने से महाव्रत की धारणा कुंटित होती है। अत: उक्त तर्क भी स्थिति में सहयोग नहीं करता।

तीसरे, प्रज्ञाश्रमणी जी ने बिना आधार दिये 'विदेह' देश को पूरा 'बिहार' प्रान्त और कुण्डपुर-विदेह को कुण्डलपुर-नालंदा मानने की स्वकल्पित घोषणा की, जो नितांत भ्रम एवं अज्ञानपूर्ण है। यह उन्होंने इसलिए किया, जिससे वे कुण्डलपुर-नालंदा को विदेह देश में स्थित होना सिद्ध कर सकें। 'उत्तरपुराण' में वर्णित महावीर चरित्र के अध्ययन से यह स्थिति स्पष्ट होती है कि वैशाली के राजा चेटक की सात पुत्रियाँ थीं। त्रिशला 'कुण्डपुर' (विदेह) के राजा सिद्धार्थ से विवाही थी। मृगावती 'वत्स' देश 'कौशाम्बी' नगरी के राजा शतानीक से विवाही थी। सुप्रभा का विवाह 'दशार्ण' देश के हेमकच्छपुर' के राजा दशरथ से हुआ था। प्रभावती का विवाह कच्छदेश के 'रोरुक' नगर के राजा उदय से हुआ था। चेलना का विवाह मगध के राजा श्रेणिक बिम्बसार से विशिष्ट घटनाक्रम में हुआ था। ज्येष्ठा और चन्दना अविवाहित रहीं और जिन-दीक्षा ग्रहण की। दिगम्बर-जैन-आगम में चम्पापुर, मूलनगर कुण्डपुर आदि का भी उल्लेख है। इनमें विदेह, मगध, चम्पापुर, कुण्डपुर, मूलनगर आदि राज्य बिहार-प्रांत में आते हैं। यदि विदेह को ही बिहार मान लेंगे, तो अन्य राज्यों की क्या स्थिति होगी। इसप्रकार दिगम्बर-जैन-आगम के अनुसार प्रज्ञाश्रमणी जी की राज्य-सम्बन्धी उक्त-कल्पना आधारहीन, अयथार्थ एवं गल्प जैसी है। *—(उत्तरपुराण, पर्व 75, श्लोक 6-14)*।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चौथे, दिगम्बर-आगम के अनुसार मुनि महावीर ने प्रथम-पारणा 'कूल' ग्राम के राजा कूल के राजमहल में की थी —(*उत्तरपुराण, पर्व 74, श्लोक 318-322*)। वर्तमान नालंदा के निकट स्थित बड़ागाँव को कुण्डपुर मान लेने पर 12-15 किलोमीटर (आठ-दस मील) की परिधि में तीन विशाल (?) राज्यों की सीमाएँ निश्चित करना होंगी; यथा— महाराजा सिद्धार्थ का राज्य, राजा कूल का राज्य और श्रेणिक राजा का मगध राज्य। 'उत्तरपुराण' के वर्णन के अनुसार राजा चेटक की नगरी वैशाली को भी इन राज्यों के निकट होना अपेक्षित है, जिसकी चर्चा आगे की गयी है। संयोग से राजा श्रेणिक की राजधानी राजगृह (पंच पहाड़ी) की स्थिति निश्चित है और अविवादित भी है। यह भी ध्यातव्य है कि 'त्रिषष्टिशलाक़ापुरुष-चरित्र' के अनुसार 'नालंदा पाडा' राजगृह से सम्बद्ध था। ऐसी स्थिति में राजगृह को केन्द्र-बिन्दु मानकर आगम, इतिहास और भूगौलिक स्थिति के प्रकाश में कुण्डपुर, कूल्हपुर और मगध-राज्य की सीमाएँ और क्षेत्र अपर-पक्ष को सहज-स्वीकृत-स्वरूप में करना अपेक्षित है, अन्यथा सभी निष्कर्ष कल्पना-मात्र होंगे। समग्रता में विचार करनेपर दिगम्बर-जैन-साहित्य के अनुसार भी दूरगामी कल्पना से नालंदा के निकट इन राज्यों एवं कुण्डपुर का होना सिद्ध नहीं होता। फिर समाज की कथित धारणा को अनदेखा कर यह भी सुनिश्चित करना होगा कि नालंदा के निकट-स्थित कुण्डपुर बड़ागांव कैसे हो गया। यदि 'वैशाली' से 'बसाड़' और 'कुण्डपुर' से 'बासोकुण्ड' नहीं हो सकता तो 'कुण्डपुर' से 'बड़ागांव' कैसे हुआ? श्वेताम्बर आगम में भी भगवान् महावीर की जीवन-घटनाओं को लेकर बड़ागांव का कहीं कोई उल्लेख देखने में नहीं आया। शोध-खोज में यथार्थ-तथ्यों का ही महत्त्व होता है। खींच-तानकर अपनी आग्रह-युक्त बात सिद्ध नहीं की जासकती।

पाँचवे, प्रज्ञाश्रमणी जी के अनुसार काल-परिवर्तन के साथ-साथ देश और प्रदेशों की दूरियाँ काफी विषम-परिस्थितियों को प्राप्त होकर 96 मील की परिधि एक-दो किलोमीटर में सिमटकर रह गई है। इस दृष्टि से मगध के राजगृही से 12 किलोमीटर की दूरी पर कुण्डलपुर हो सकता है। इस सम्बन्ध में हमारा इतना ही निवेदन है कि जैनदर्शन के अनुसार छह द्रव्यों में जीवद्रव्य मात्र संकोच-विस्तार शक्तिवाला है। पुद्‌गल द्रव्य, रूप, रस, गंध, वर्ण, स्पर्शवाला है। पुद्‌गल अणु और स्कन्धरूप में रहकर शाश्वतता लिए है। उसमें ऐसा संकोच-विस्तार जैनागम के प्रतिकूल है। आगम में भूमि, पृथ्वी, पृथ्वीकाय, पृथ्वीकायिक एवं पृथ्वी-जीव की व्याख्या बहुत स्पष्ट है। इनके मध्यम अंत:सम्बन्धों एवं लक्षणों के अनुसार प्रज्ञाश्रमणी जी का उक्त तर्क-कुतर्क ही कहा जाएगा। फिर रूपांतरण की प्रक्रिया भी अति-दीर्घकालिक होती है। पृथ्वी में इतना संकोच 2500सौ वर्षों में हो सकता है या नहीं इसे सिद्ध करने के लिये प्रज्ञाश्रमणी जी को एक अंतर्राष्ट्रीय-सम्मेलन करवाना चाहिये। उसके निष्कर्षों से यह पता चल जाएगा कि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हमारा सोच कितना यथार्थ/अयथार्थ है, विकृत है आदि। हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि नगरी/ राजाओं आदि का वर्णन उपमारूप में काव्यात्मक होता है, उसे यथार्थ से जोड़ने में बहुत संकट खड़े हो सकते हैं। इशारा पर्याप्त है। प्रज्ञाश्रमणी जी को एक लाख योजनवाले ऐरावत हाथी की भी समस्या है कि वैशाली-कुण्डपुर में कैसे भ्रमण करेगा। मैं उनसे विनम्रतापूर्वक जानना चाहता हूँ कि उनके संकोच-विस्तार के अनुपात से ऐरावत हाथी क्या समग्र एशिया महाद्वीप में भी बैठा/खड़ा रह सकता है? कृपया गम्भीरता से विचार करें। एक अयथार्थ हठरूप मान्यता सिद्ध करने कहीं हम जैनागम को प्रश्नचिह्नित करने का महान् कार्य तो नहीं कर रहे हैं? इस बिन्दु पर विद्वान् मनीषियों, पुरस्कार-विजेताओं और जिन-दीक्षाधारियों को विचारना चाहिये।

छठवें, नाना-नानी की सुन्दर भावोत्तेजक कल्पना कर प्रज्ञाश्रमणी जी ने पाठकों का ध्यान इस कटु-सत्य से हटाने का प्रयास किया है कि वैशाली उस काल में वज्जिसंघ की राजधानी थी। इस संघ में राजा चेटक, राजा सिद्धार्थ, राजा कूल जैसे अन्य अनेक राजाओं के राज्य सम्मिलित थे। इन भागीदारों की राज्य सीमाएँ एक-दूसरे से जुड़ी थीं। यह वस्तुस्थिति उपरोक्त दिगम्बर आगम, श्वेताम्बर आगम, बौद्ध ग्रन्थों एवं इतर साहित्य से सहज सिद्ध होती है। इसे स्वीकारने की अपेक्षा बौद्धधर्मावलम्बी श्रेणिक की राजधानी के एक नालंदापाडा का कुण्डपुर मानना प्रज्ञाश्रमणी जी की प्रज्ञा यदि स्वीकारती है, तो वह उनकी प्रज्ञा का विषय हो सकता है। उससे वस्तुस्थिति में परिवर्तन तो नहीं हो जाएगा। ऐसा करते समय उन्हें तीर्थंकर के महान् पिता के महान् राज्य की सीमा और स्थिति भी सप्रमाण सिद्ध करना चाहिये। यह प्रमाण दो प्रकार के होंगे— पहला नालंदा कुण्डपुर की सिद्धि का और दूसरा वासोकुण्ड-कुण्डपुर के पक्ष में दिये गये समग्र तथ्यों की असिद्धि का। मात्र मिथ्या-कल्पना और कल्पित-आक्षेप लगाने से कार्य की सिद्धि नहीं होगी, उससे तो पद की मर्यादा खंडित होती है।

सातवें, जैनधर्म की नींव सम्यक्-श्रद्धा पर आधारित है। हमारी परम्परागत श्रद्धा तो पर-वस्तुओं एवं विभाव-भावों में रचने-पचने की है। भेद-विज्ञान द्वारा ज्ञान-स्वभावी स्वयंभू आत्मा के अनुभवरूप श्रद्धान से संवर होता है। यही बात इस प्रकरण में लागू होती है। जन्मस्थली की श्रद्धा व्यक्तिवाची न होकर समिष्टरूप है। इसकी श्रद्धा-अश्रद्धा से मोक्षमार्ग बाधित नहीं होता। श्रद्धा ज्ञान का अनुकरण करती है। नवीन-तथ्यों के प्रकाशन में श्रद्धा बदलती है। जो अनाग्रही होते हैं, उन्हीं की श्रद्धा सम्यक् होती है, —ऐसा आगमवचन है। अत: परम्परा श्रद्धा या अपुष्ट स्थापना-निक्षेप की अवधारणा से भी नालंदा-कुण्डलपुर वीर-जन्मभूमि सिद्ध नहीं होती।

अंत में, प्रज्ञाश्रमणी जी ने गणिनी ज्ञानमती जी के जन्मस्थल और कर्मभूमि की भिन्नता निरूपित कर वैशाली में प्राप्त पुरातत्त्वीय प्रमाणों एवं आगम-संदर्भों को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मूल्यहीन सिद्ध करने का प्रयास किया। प्रथम तो, उनके इस चिंतन से वस्तुस्थिति में कुछ प्रभाव नहीं पड़ता। दूसरे, जैन-संस्कृति को गणिनी जी की यह नई देन है। जैन-परम्परा में गृहत्यागी जिन-दीक्षाधारी की कोई स्थायी कर्मभूमि नहीं होती। उन्होंने और उनके परिवार के सदस्यों ने हस्तिनापुर को स्थायी कर्मभूमि बनाया। उनका अनुकरण कर जिनेश्वरी दीक्षाधारी अन्य महानुभावों ने भी अपनी-अपनी कर्मभूमियाँ गढ़ने-हेतु अध:कर्म-प्रवृत्ति रूप कार्य किया, जो जिनशासन को विनाश की ओर ले जानेवाला है। गम्भीर विवेकीजन विचारकर इस विकृति को रोकें, अन्यथा गढ़वादी प्रवृत्तिं के जो परिणाम पहले बौद्धधर्म के साथ हुए उसकी पुनरावृत्ति जैनधर्म के साथ होना अवश्यंभावी है।

समग्ररूप से प्रज्ञाश्रमणी जी के नालंदा-कुण्डलपुर के पक्ष में दिये गये तर्क सद्भावना के परे एकपक्षीय-पूर्वाग्रह पूर्ण प्रतीत होते हैं, पुनर्विचार अपेक्षित है।

श्री प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जी :— ज्ञानवृद्ध, वयोवृद्ध प्राचार्य जी की विचारणा के प्रतिकूल कुछ भी लिखना दु:साहस होगा। वे और उनकी भाषा मोहक है, फिर भी अभिप्रायजन्य विरोधाभास वे चाहकर भी दूर नहीं कर सके। परिस्थितियाँ कुछ ऐसी हैं, कि वे कुछ कर भी नहीं सकते। आइये, अब उनके दृष्टिकोण पर विचार करें—

जब कोई वस्तु खो जाती है, तभी उसकी खोज होती है। खोज कौन करे? —यह तो खोजकर्ता की रुचि और उसके साधनों पर निर्भर करता है। खोजकर्ता देशी-विदेशी, शासन-अशासकीय संस्थाएँ, व्यक्ति आदि कोई भी हो सकता है। सही खोज वही कर सकता है, जो निष्पक्ष, आग्रहहीन, अहंकारविहीन और मानसिकरूप से ईमानदार हो। बिना प्रमाण के किसी शोधकर्ता के विरुद्ध कुछ भी कहना अपनी हीन-मनोवृत्ति का परिचय देना है। यह इतिहास की त्रासदी है कि वैशाली, कुण्डपुर, कूलग्राम एवं वज्जिसंघ के अन्य-राज्य आतातायियों और अपनों द्वारा ही अनेकों बार ध्वस्त होकर जमींदोज हो गये। वे इतिहास या आगम के विषय हैं, भूगोल के नहीं। इसीकारण सम्भाव्य-स्थानों पर उनकी खोज हुई। उनके स्थान पर नये नगर/नई बस्तियाँ बन गयीं। ऐसी स्थिति में इस तर्क का कोई मूल्य नहीं होता कि किस नाम से क्या नाम बना या बन सकता है। यहाँ प्रकरण पुराना नाम मिटाकर नया नाम लिखने का है। खोज का विषय यह है कि कौन सा नया नाम किस पुराने नाम या स्थल का प्रतिनिधित्व कर रहा है। इसी दृष्टि से पुरातत्त्वीय प्रमाण, आगम-साहित्य एवं इतिहास की घटनाओं के आलोक में 'बासोकुण्ड' को 'कुण्डपुर' चिन्हित किया गया और 'बसाड़' को 'वैशाली'। खोज में क्या भूल या चूक हुई और कैसे गलत-निष्कर्ष निकाले गये, सप्रमाण यह सिद्ध करना चाहिये, जो नहीं किया गया। बिना कभी बताए नई खोज को गलत सिद्ध कैसे करें। कुण्डपुर (बासोकुण्ड) की खोज 'अ.भा. दिगम्बर जैन परिषद्' के तत्त्वावधान में सर्वश्री डॉ. कामताप्रसाद जी,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पं. जुगल किशोर जी मुख्तार, डॉ. ज्योतिप्रसाद जी, डॉ. ए.एन. उपाध्ये, डॉ. हीरालाल जी जैसे अनेक समर्पित जैन-मनीषियों एवं श्रमणों द्वारा सन् 1929 से की जा रही थी और वह भी दिगम्बर-जैन-आगम के संदर्भों के परिप्रेक्ष्य में। इन सबकी महती श्रम-साधना और कर्तृत्व को हल्के-फुल्के अनुत्तरदायी-शब्दों से नकारा नहीं जा सकता। उनकी खोज में आजादी के बाद की माननेवाले अपनी बदनीयत को व्यक्त करते हैं। यदि पूर्व-विद्वानों पर आक्षेप लगाने का क्रम चलता रहा, तो आनेवाले समय में हम भी प्रश्नचिह्नित हो जाएंगे। परम्परा नष्ट हो जाएगी।

माननीय प्राचार्य जी एक ही श्वास में दो परस्पर-विरोधी बात एक साथ कर रहे हैं। एक ओर, वे दिगम्बर के अलावा जैनेतर-साहित्य को प्रमाण नहीं बनाना चाहते और उससे उत्पन्न अनेकों विसंगतियों से सावधान करते हैं, तो दूसरी ओर वे उसी क्रम में श्वेताम्बर ग्रन्थ 'भगवतीसूत्र' के कथन को प्रमाण मानकर कहते हैं "वैशाली और नालन्दा दोनों ही स्थानों के समीप 'कोल्लाग सन्निवेश' और दो-दो 'कुण्डग्राम' थे। इस उल्लेख के आधार पर कुण्डलपुर-नालंदा को जन्मभूमि मानने में कोई अड़चन शेष नहीं रहती" *(संदर्भ— 'निर्मल ध्यान-ज्योति', अक्तूबर 02, पृ. 9)*। स्पष्ट है कि जो नहीं है उसे हम उसी 'भगवतीसूत्र' के आधार पर सिद्धकर देना चाहते हैं, जिसमें भगवान् महावीर को मांसाहारी होना भी स्वीकारते हैं। दूसरे, श्वेताम्बर-आगम नालंदा को स्पष्टरूप से राजगृह का एक पाड़ा मानता है ('वर्धमान जीवन कोश', पृष्ठ 324) जहाँ महावीर ने दूसरा चातुर्मास किया, क्या हम इसे स्वीकारने को तैयार हैं? ऐसा होने पर सारा विवाद ही स्वत: सुलझ जाएगा। महावीर ने राजगृह-नालंदा से ही 'कोल्लाक ग्राम' विहार किया था। तीसरे, श्वेताम्बर-आगम के अनुसार महावीर 'मिथिला' नगर से विहारकर 'वैशाली-विशाला' नगरी पधारे, जहाँ उन्होंने ग्यारहवाँ चार्तुमास किया और 'सुकुमारपुर' विहार किया (आवश्यक निर्युक्ति गाथा 517)। इसके पहले भी महावीर सिद्धार्थपुर से वैशाली पधारे थे और वहाँ से मार्ग में गण्डकी नदी नाव से पारकर 'वाणिज्यग्राम' पधारे। इस वर्णन से यह स्पष्ट है कि वैशाली नगरी मिथिला एवं वाणिज्यग्राम आदि के बीच कहीं स्थित थी, न कि सिन्धुदेश में; जैसा कि अपरपक्ष का कथन है। क्या अपरपक्ष श्वेताम्बर-आगम के प्रकाश में वैशाली की स्थिति उक्तानुसार स्वीकार करने को तत्पर है —*(वर्धमान कथा कोश, पृष्ठ 310, 314 एवं 328)*।

'भगवतीसूत्र' में कुण्डग्राम का उल्लेख है। प्रज्ञाश्रमणी जी को महावीर के सम्बन्ध में ग्राम शब्द इष्ट नहीं है। फिर यहाँ कुण्डलपुर शब्द न होकर कुण्डग्राम लिखा है। कुण्डग्राम से कुण्डलपुर कैसे हुआ। क्या दोनों समानार्थी है, फिर 'विदेह' का क्या हुआ। क्या विदेह नालंदा बन गया। हमें ज्ञात ही नहीं कि हम अपने आधार को स्वयं ही ध्वस्त कर दूसरों को बचाव की शिक्षा दे रहे हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राचार्यश्री ने कुण्डपुर (वैशाली) को भगवान् महावीर की जन्मस्थली मान लेने पर पुराण-विषयक विसंगतियाँ उत्पन्न होने का संकेत दिया। उनका इशारा 'उत्तरपुराण' के पर्व 75 के श्लोक तीन में वर्णित राजा चेटक की राजधानी की ओर है जिसमें **'सिन्ध्वाढ्य-विषये भूभृद्वैशाली नगरेऽभवत्'** के अनुसार सिंधु-प्रदेश के वैशाली का राजा बताया है। विदेह देश के बाहर वैशाली को खोजने के पहले हमें पर्व 75 के श्लोक 20-31 के घटनाक्रम के मध्यम संगति बैठाना होगी, जिसके अनुसार राजा चेटक सेना के साथ राजगृह जाते हैं और श्रेणिक ज्येष्ठा और चेलना से विवाह का प्रस्ताव करता है। चेटक की अस्वीकृति के बाद राजकुमार अभय षडयंत्रपूर्वक सुरंग-मार्ग से चेलना को वैशाली से राजगृह लाकर उसकी शादी श्रेणिक से करवाता है। इस घटना की पुष्टि 'पुण्यास्रव-कथाकोषकार' श्री रामचन्द्र मुमुक्षु (12वी-13वी शताब्दी) ने की है और लिखा है कि सुरंग-मार्ग से कुछ ही दिनों में वैशाली से राजगृह चेलना को ले आया। **'दिनान्तरे राजगृहं समाययौ'** —*(पृष्ठ 41)*। इससे यह तो निर्विवादरूप से स्पष्ट है कि वैशाली से राजगृह की दूरी इतनी रही होगी, जिसे सुरंग-मार्ग से कुछ दिनों में तय की जा सके। विद्यमान बसाड़ (वैशाली) से यह सम्भव है, किन्तु पाकिस्तान-पंजाब स्थित सिंध देश से यह कदापि सम्भव नहीं है? इसे अस्वीकारने पर हम अपने ही आगम-कथन को संदिग्ध-अप्रामाणिक सिद्ध कर देंगे। यहाँ 'सिन्ध्यवाढ्यविषये' का अर्थ नदीप्रधान 'विदेह' नामक प्रदेश में स्थित वैशाली नगर से है, जिसमें चेटक निवास करते थे —*(वर्धमान जीवन कोश, पृष्ठ 86)*। सिन्धु का एक अर्थ नदी होता है। —*(आदिपुराण, भाग 2, पृष्ठ 548)* सिन्धु देश का आशय है— नदी के तीर पर स्थित प्रदेश-तीर प्रदेश-तीर भुक्ति। पश्चिम के सिन्धु सौवीर से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। यह उल्लेखनीय है कि आचार्य जिनसेन ने भरत की पश्चिम दिग्विजय-यात्रा में मद्र, कच्छ, कश्मीर आदि के साथ सिन्धु नामक किसी देश का उल्लेख नहीं किया —*(आदिपुराण, भाग 2, पर्व 29, श्लोक 39-42 एवं 47-48)*। नदियों के नामों में सिन्धु नदी का नाम आया है —*(वही, श्लोक 61-66)*। तथा पर्व 35, श्लोक 27 में 'सिन्धुश्च' शब्द का अर्थ नदी माना है —*(वही, पृष्ठ 174 एवं 548)*। इस संदर्भ में 'सिन्ध्वाढ्य' का भाव देश न होकर जल/नदी मानने से आगम के उक्त कथनों की संगति एवं सम्भाव्यता सिद्ध होती है। यथार्थ को अस्वीकार करने हेतु निकटवर्ती सहज स्थिति या अर्थ की उपेक्षा करने पर हम निराधार हो जायेंगे। समग्रता में वैशाली का विदेह में स्थित होने की पुष्टि होती है। दिगम्बरेतर-साहित्य भी इसकी पुष्टि करता है। प्राचार्यश्री से साग्रह अनुरोध है कि वे खुले मन से दिगम्बर-आगम के कथनों के संदर्भ में निर्णय करें और काल्पनिक-विसंगतियों के बोझ से मुक्त हों।

प्राचार्यश्री का यह आरोप भी आधारहीन एवं दुर्भावनापूर्ण है कि केन्द्र सरकार से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुदान पाने के लालच में तीर्थक्षेत्र कमेटी में बदलाव आया। एक शताब्दी पूर्व के पुरातत्त्वविदों, सात-आठ दशाब्दि पूर्व के जैन-जैनेतर इतिहासकारों एवं खोजकर्ताओं को यह स्वप्न में भी नहीं आया होगा कि वर्ष 2001-2002 में केन्द्रीय शासन से अनुदान मिलेगा। स्वयं गणिनीप्रमुख को एक वर्ष पूर्व इसकी कल्पना नहीं थी, फिर ऐसा आरोप लगाना संकीर्ण मानसिकता का ही सूचक है। वस्तुस्थिति तो यह है कि कुण्डलपुर-नालंदा को अनुदान न मिलने के कारण जैनदीक्षाधारी माताजी ने अपने पद की मर्यादा के प्रतिकूल एक नया प्रकरण पैदा कर विद्वानों और समाज को विभक्त कर दिया। इस सम्बन्ध में तीर्थक्षेत्र कमेटी के सम्मानीय अध्यक्ष साहू रमेशचन्द्र जैन का आलेख 'भगवान् महावीर की जन्मस्थली कुंडपुर' —*(प्राकृतविद्या, जुलाई-सितम्बर '02, पृष्ठ 28)* अवलोकनीय है।

प्राचार्यश्री ! आप 'शास्त्री-परिषद्' के अध्यक्ष हैं। कृपया इस बिन्दु पर प्रकाश डालें कि क्या अ.भा.दि. जैन शास्त्री परिषद् की कार्यकारिणी की दिल्ली में दिनांक 11.2.02 को बैठक सम्पन्न हुई थी और क्या उसमें कुण्डलपुर-नालंदा के समर्थन में प्रस्ताव पारित हुआ था, जैसाकि आर्यिका चन्दनामती जी के ट्रेक्ट पृष्ठ 6 एवं 'ऋषभदेव-जैन-विद्वत्-महासंघ' की पुस्तक 'भगवान् महावीर.....मनीषियों की दृष्टि में' के आवरण-पृष्ठ पर प्रकाशित किया है। कृपया 'प्राकृतविद्या' उक्त अंक के पृष्ठ 68 का अवलोकन करें। यह कौन-सी सद्भावना, नैतिकता एवं प्रामाणिकता के क्षेत्र में आता है। सामान्य-आचार में यह जघन्य-अपराध है, जो जन-भ्रम-हेतु धार्मिक क्षेत्र में निर्भीकता से किया जा रहा है। प्राचार्यश्री से अनुरोध है कि वे सत्य-तथ्य को अनावृत करें और असत्य का सहारा लेने वालों की निंदा करें।

अंत में, यह 'हुंडावसर्पणी काल' है। वैशाली कुण्डपुर का अंत अजातशत्रु ने महावीर के जीवनकाल में ही कर दिया था; अतः उस पुण्य-क्षेत्र के नाम की दुहाई देकर जनता को कुमार्ग अपना कर भ्रमित नहीं करना चाहिये। सच्चाई, सच्चे-मन से स्वीकारना चाहिए, इसी में सभी का हित है। हठ का धर्म-क्षेत्र में कोई स्थान नहीं होता।

डॉ. अभय प्रकाश जी :— आपने अपने मामा श्री कामता प्रसाद जी के कर्तृत्व को महिमामंडित कर उचित ही किया था। दुर्भाग्य, उसी लेखनी से उनके कर्तृत्व को उसीतरह जमींदोज कर दिया, जैसा अजातशत्रु ने अपने नाना-मौसा का राज्य किया था। घर में आग घर के दिए से ही लगती है— अभिप्राय की भिन्नता से। वे स्वीकारते हैं कि कुंण्डलपुर का कोई भौतिक अस्तित्व नहीं है। उन्हें स्मरण होना चाहिये बासोकुण्ड में दो बीघा जमीन 'अहल्ल' (बिना जुती) सदियों से पूज्य मानकर छोड़ी है— पूज्य है और अजैन-भाईयों ने निःशुल्क समाज को समर्पित की है।

नालंदा के निकट बड़ागांव का जैनमंदिर मार्ग में होने से सभी जन सहज धर्म-श्रद्धा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भाव से जाते हैं। कैलाश पर्वत पर कौन जाता है, कितने जाते हैं; तो क्या आदिनाथ भी निर्वाण-स्थली मानना भूल जावें? आरोपित-श्रद्धा भी ज्ञान के प्रकाश में बदल जाती है।

आपने लिखा आचार्य-प्रवर श्री विद्यासागर जी के संघ से लेकर अन्य सभी मुनिसंघ इसी पक्ष में हैं। इस सम्बन्ध में उन्हें अपनी असत्य-कल्पना के प्रमाण प्रस्तुत करने चाहिए। चालू बात लिखकर भ्रम पैदा नहीं करना चाहिये। हमारी जानकारी में आचार्यश्री ने अपना मौन-भंग नहीं किया है, प्रकरण चिंतन की प्रक्रिया में है। यद्यपि उनके गुरु और शिष्यत्रय यथा— मुनिश्री समता सागर जी, मुनिश्री प्रमाण सागर जी, उपाध्याय गुप्तिसागर जी आदि एवं अन्य आचार्य-मुनिराज कुण्डपुर-विदेह (वासोकुण्ड-वैशाली) को महावीर की जन्मस्थली निर्विवादरूप से स्वीकारते हैं।

उपसंहार :— समग्रता में यह महत्त्वपूर्ण नहीं है कि 'कुण्डपुर-विदेह' कौन-सा स्थल स्वीकार किया जाए और कौन नहीं। जिसकी जहाँ श्रद्धा है, उसकी अपनी निजी श्रद्धा है। यह भी महत्त्वपूर्ण नहीं है कि कौन अविकसित क्षेत्र/तीर्थ का विकास कर रहा है। जिनेश्वरी दीक्षा की भावना के प्रतिकूल यह कार्य इष्ट नहीं है। अध:कर्म प्रवृत्ति पाप/हिंसामूलक है। मूल बात सिर्फ इतनी है कि हम अपनी बौद्धिकता, इष्ट-भावनाओं एवं पद की मर्यादा के प्रति ईमानदार रहें। यदि हमने दिगम्बर-जैन-आगम को आधार बनाया है, तो उसी से सिद्ध करें, भले ही सिद्ध हो या न हो। प्रबल युक्ति एवं पक्ष को स्वीकार करें। यदि परिस्थितिजन्य-साक्ष्य को सम्मिलित करना है, तो फिर एकांगी विरोधी-उपदेश क्यों दें और अपने पक्ष के समर्थन-हेतु मूल-आगम क्यों बदलें? साम-दाम-दण्ड-भेद से अपनी आधारहीन-कल्पनाओं को प्रमाण माने तथा अपर-पक्ष के ठोस-सबल तर्क, साक्ष्य, जैनेतर-साहित्य आदि को दृष्टि करें और पूर्वविद्या-मनीषियों, समाजसेवकों को निराधार लांछित करें। तीर्थ विकास हो, उसे करें; परन्तु अकारण विद्वान्/पत्रकार/जिनेश्वरी दीक्षाधारकों में मतभेद, ईर्ष्या या अहंकार/विद्वेष की भावना न पनपने दें, —यही भावना है। भगवान् महावीर की जन्मस्थली कुण्डपुर (वासोकुण्ड) को सादर नमन ! ❖❖

निमित्त-नैमित्तिक-संबंध

'वृत्त्यर्थं नातिचेष्टेत सा हि धात्रैव निर्मिता।
गर्भादुत्पत्तिते जन्तौ मातु: प्रस्रवत: स्तनौ।।'

अर्थ :— विचारकर देख, गर्भ में से बालक जन्मने के लगभग तीन महीने बाकी रहते हैं, उसके पहले ही उस जन्म-धारण करनेवाले बालक की माँ के स्तनों में दूध उत्पन्न हो जाता है, जिससे बालक जन्म लेते ही उसका पोषण करने के लिये तैयार रखे गए उपायों का उपभोग कर सके। ◆◆

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राकृतभाषा में लोरी

—हिन्दी से प्राकृत-रूपान्तरण : डॉ. वीरसागर जैन

अरिहंतो तुह जणगो, जणणी सुहदा य तुज्झ जिणवाणी।
हे मम बंधु ! जाणदु, अरिहंतो होदुं सुगमं त्ति।। 1।।

सिद्धो सुद्धो जणगो, जणणी सुहदा य तुज्झ जिणवाणी।
हे मम बंधु ! जाणदु, सिद्धो पुण होदुं सुगमं त्ति।। 2।।

आइरिओ तुह जणगो, जणणी सुहदा य तुज्झ जिणवाणी।
हे मम बंधु ! जाणदु, आयरिओ होदुं सुगमं त्ति।। 3।।

उवज्झाओ तुह जणगो, जणणी सुहदा य तुज्झ जिणवाणी।
हे मम बंधु ! जाणदु, उवज्झाओ होदुं सुगमं त्ति।। 4।।

मुणिराओ तुह जणगो, जणणी सुहदा य तुज्झ जिणवाणी।
हे मम बंधु ! जाणदु, मुणिराओ होदुं सुगमं त्ति।। 5।।

हिन्दी अर्थ :— (माँ अपने बालक को लोरी सुनाते हुए पालने में ही उत्तम संस्कार दे रही है कि हे मेरे प्यारे पुत्र !) अरिहंत देव तेरे पिता हैं और सुख देने वाली जिनवाणी तेरी माता है। तथा हे मेरे भाई ! यह जान लो, अरिहंत होना बहुत सरल है, तेरे आत्मा का स्वभाव है।। 1।।

शुद्ध सिद्ध परमात्मा तेरे पिता हैं और सुख देने वाली जिनवाणी तेरी माता है। हे मेरे भाई ! यह जान लो, सिद्ध होना भी बहुत सरल है, आत्मा का स्वभाव ही है।। 2।।

आचार्य परमेष्ठी तेरे पिता हैं और सुख देने वाली जिनवाणी तेरी माता है। हे मेरे भाई ! यह जान लो, आचार्य होना भी बहुत सरल है, आत्मा का सहज-स्वभाव है।। 3।।

उपाध्याय परमेष्ठी तेरे पिता हैं और सुख देने वाली जिनवाणी तेरी माता है। हे मेरे भाई ! यह जान लो, उपाध्याय होना भी बहुत सरल है, आत्मा का सहज-स्वभाव है।। 4।।

मुनिराज (साधु परमेष्ठी) तेरे पिता हैं और सुख देने वाली जिनवाणी तेरी माता है। हे मेरे भाई ! यह जान लो, मुनिराज होना भी बहुत सरल है, आत्मा का सहज-स्वभाव है।। 5।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राच्य भारतीय अभिलेख एवं प्राकृतभाषा

—डॉ. शशिप्रभा जैन

आधुनिक ऐतिहासिक-दृष्टिकोण ने राजनैतिक-इतिहास के अध्ययन के साथ ही प्राचीन-संस्कृतियों और सभ्यताओं के विशद-अध्ययन की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया। विभिन्न पुरातात्त्विक साधनों द्वारा बीते हुए युग की सभ्यताओं का परिचय प्राप्त करने का प्रयत्न अन्वेषक-इतिहासज्ञों ने किए जिनमें प्राचीन-साहित्य, शिलालेख, ताम्रपत्र आदि अनेक वस्तुएँ प्राचीन संस्कृति के साथ-साथ तत्कालीन प्रचलित-भाषा, जिसमें वे लिखी गई हैं, उसका भी बोध कराती हैं।

पुरातात्त्विक-स्रोतों के अन्तर्गत सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण-स्रोत अभिलेख हैं। प्राचीन भारत के अधिकतर अभिलेख पत्थरों या धातु की चादरों पर खुदे मिलते हैं, अत: उनमें साहित्य की भाँति परिवर्तन संभव नहीं है। यद्यपि सभी अभिलेखों पर उनकी तिथि अंकित नहीं है, फिर भी अक्षरों की बनावट, उनमें प्रयुक्त भाषा के आधार पर उनका काल मोटे रूप में निर्धारित हो जाता है। ईसापूर्व तीसरी सदी से बारहवीं सदी तक भारत में अनेक अभिलेख उत्कीर्ण होते रहे हैं। प्राचीन समय के सहस्रों लेख प्रकाश में आए हैं तथा आज भी खुदाई से नए अभिलेखों का पता चल रहा है। इनमें सर्वाधिक अभिलेख अशोक के हैं, जिनमें प्राकृतभाषा का प्रयोग किया गया है। ये लेख भारत के प्रत्येक कोने से मिले हैं, जो समस्त भारत में प्राकृतभाषा के प्रचार एवं प्रसार का सब प्रमाण है।

भारतीय शासकों के सबसे प्राक्कालीन पुरालेखीय-विवरण प्राकृतभाषा में मिलते हैं। मूलत: सारे भारत की पुरालेखीय भाषा प्राकृत थी। उत्तर-भारत के अभिलेखों में संस्कृत सबसे पहले लगभग पहली शती ई.पू. के उत्तरार्द्ध में दृष्टिगत होती है। उत्तर-भारत के अभिलेखों में प्राकृत के स्थान पर संस्कृत की स्थापना लगभग तीसरी शती के अंत तक पूर्ण हो सकी, जबकि दक्षिण-भारत के पुरालेखों में प्राकृत का अस्तित्व चौथी शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक रहा।

अशोक-पूर्व अभिलेख

शौरसेनी-प्राकृत का क्षेत्र व्यापक रहा है और वह सामान्य-प्राकृत के रूप में भी प्रयुक्त होती रही है। अत: प्राचीम-राजाओं ने जो शिलालेख लिखवाए, उनमें जनता की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बोली प्राकृत का होना स्वाभाविक है। इसीसे अशोक-पूर्व अभिलेखों में **पिपरहवा – बौद्ध अस्थिकलश अभिलेख** (पाँचवीं शती ई.पू.), **सोहगौरा ताम्रपत्र-अभिलेख** (लगभग चौथी शती ई.पू.) तथा **महास्थान खण्डित प्रस्तर-पट्टिका अभिलेख** (लगभग 300 ई.पू.) इन सभी में 'प्राकृतभाषा' एवं 'ब्राह्मी-लिपि' का प्रयोग किया गया है।

अशोक के शिलालेख

सम्राट अशोक के द्वारा जो शिलालेख लिखाये गये, उनमें प्राकृतभाषा का प्रयोग हुआ। उस प्राकृत में शौरसेनी-प्राकृत की अनेक विशेषताएँ उपलब्ध हैं। अशोक के विशाल-साम्राज्य की फैली हुई सीमाओं पर खुदवाये गए इन अभिलेखों को 'भारत का प्रथम लिंग्विस्टिक सर्वे' कहा जा सकता है। यद्यपि ये शिलालेख एक ही शैली में लिखे गए हैं, फिर भी इनकी भाषा में स्थान-विशेष के कारण अन्तर है। इसी अन्तर को 'वैभाषिक-प्रवृत्ति' कहा गया है। इन शिलालेखों में पश्चिमोत्तर में पैशाची-प्राकृत, पूर्व में मागधी की, दक्षिण-पश्चिम में शौरसेनी-प्राकृत की एवं मध्यपूर्वी-समूह में शौरसेनी और मागधी की मिश्रित प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं। **अशोक की राजभाषा 'मागधी-प्राकृत' थी।** पर उस काल के वृहत्तर-भारत में शौरसेनी का अस्तित्व विद्यमान था।

इसप्रकार अशोक ने सभी प्राकृतों को अपनाकर सभी में शिलालेख लिखवाए, क्योंकि प्राकृतें इस समय सम्पूर्ण भारत की जनभाषाएँ थीं, जबकि मगध में राज्य करने के कारण राजभाषा का दर्जा केवल 'मागधी-प्राकृत' को मिला था।

खारवेल का शिलालेख

ई.पू. कालीन सदियों की जैन-मूर्तिकला, जैनधर्म के प्रभाव-विस्तार, जैनी मुनि-सम्मेलन एवं साहित्यिक-संगीति आदि ऐतिहासिक संसूचनाओं की सुरक्षा की दृष्टि से ई.पू. दूसरी सदी का उदयगिरि-खण्डगिरि में स्थित प्राकृतभाषा में निबद्ध शिलालेख न केवल जैन-इतिहास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है; अपितु नन्दकालीन भारतीय इतिहास, मौर्य-पूर्वयुग की भारतीय-प्राच्य-मूर्ति-शिल्पकला, प्राचीन कलिंग एवं मगध के राजनैतिक सम्बन्ध, दक्षिण भारतीय राज्यों से कलिंग के सम्बन्ध आदि का उसमें सुन्दर वर्णन है। यही एक शिलालेख है, जिसकी दसवीं पंक्ति में भारत का नाम **'भरधवस'** मिलने के कारण उसे प्राचीनतम शिलालेखीय-प्रमाण मानकर भारत का संवैधानिक-नाम **'भारतवर्ष'** घोषित किया गया। **डॉ. काशीप्रसाद जायसवाल** के अनुसार **"ई.पू. 450 तक के प्राच्य-भारतीय-इतिहास के क्रम-निर्धारण में यह विशेष-सहायक है।** इस शिलालेख से यह भी स्पष्ट होता है कि भगवान् महावीर के परिनिर्वाण के लगभग 100 वर्ष बाद ही जैनधर्म कलिंग का राष्ट्रधर्म बन गया था।"

इसप्रकार चेदिवंशीय कलिंग-सम्राट् खारवेल का यह हाथीगुम्फा-अभिलेख मौर्योत्तर 'ब्राह्मी-लिपि' में 'प्राकृतभाषा' में लिखे होने से तत्कालीन समाज में प्राकृत के जनभाषा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एवं राजभाषा होने को सूचित करता है।

विदेशी-शासकों के अभिलेख

उत्तर-पश्चिमी भारत के हिंद-यूनानी-युग के अभिलेखों में अशोक के शाहबाजगढ़ी और मानसेहरा के अभिलेखों की भाँति प्राकृत की भाषागत-विशेषताएँ मिलती हैं। 'हेलियोदोर' नामक यूनानी तक्षशिला से विदिशा के राजा भागचन्द्र के दरबार में आया था। वह हिन्द-यूनानी-शासक 'अंतलिकित' (दूसरी शती ई.पू. के अन्तिम-चरण) का राजदूत था। उसके बैसवनगर (विदिशा) मध्यप्रदेश के अभिलेख में संस्कृत और साहित्यिक-प्राकृत का कुछ प्रभाव द्रष्टव्य है। इसीप्रकार शक-पार्थियन और कुषाण-शासकों के कुछ अभिलेख प्राकृत और मिश्रित-भाषा में मिले हैं। यह बात संस्कृत के कुछ प्रारभिक-पुरालेखों में जो शक-राष्ट्रीयता के विदेशी-शासकों के लेखों में प्रयुक्त है, दृष्टिगत होती है।

शक-क्षत्रप अभिलेख : शोडासकालीन मथुरा-पूजा-अभिलेख

15 ई. में संस्कृत- प्रभावित प्राकृतभाषा में निबद्ध यह अभिलेख मथुरा जिले के कंकाली टीला में प्राप्त हुआ नहपानकालीन दो नासिक गुहालेख भी प्राकृतभाषा में उपलब्ध है, जो नहपान के जामाता ऋषभदत्त ने लिखवाये हैं।

भारतीय-यवन अभिलेख

इनमें मेनेन्दर-कालीन शिवकोट-प्रस्तर-अस्थि-मंजूषा- अभिलेख 115-90 ई.पू. तथा शेन्डोफरनीज का तख्त-ए-बाही प्रस्तर अभिलेख —ये दोनों ही 'खरोष्ठी-लिपि' में निबद्ध हैं, जिनकी भाषा प्राकृत है।

कुषाणकालीन अभिलेख

(1) इसमें पहला कनिष्क प्रथमकालीन सारनाथ 'बौद्ध प्रतिमाभिलेख' (81 ई.) है, जिसकी प्राकृतभाषा संस्कृत से प्रभावित है। (2) दूसरा कुषाण राज्य का 'तक्षशिला रजतपत्र अभिलेख' है। इसकी भाषा प्राकृत, परन्तु लिपि 'खरोष्ठी' है। (3) तीसरा हुवियन का 'वर्डाक कांस्य पत्र-लेख' अफगानिस्तान में वर्डाक के एक स्तूप से प्राप्त हुआ है। इसकी प्राकृतभाषा संस्कृत से प्रभावित है तथा लिपि 'खरोष्ठी' है। (4) चौथा हुविष्क का 'मथुरा प्रस्तर अभिलेख' है, जिसकी भाषा 'प्राकृत' और लिपि 'ब्राह्मी' है। प्रमाणों से ज्ञात होता है कि वासिपक के बाद हुवियक कुषाण-वंश का शासक बना। (5) पाँचवाँ कनिष्क द्वितीय का 'आरा पाषाण-लेख' है। 78 ई. में लिखित प्राकृतभाषा के इस लेख में कनिष्क के शासन में दषणहर द्वारा बनवाने कुआँ बनवाने का उल्लेख है। (6) छठा 'कालवान ताम्रपत्र अभिलेख' (रावलपिण्डी) में प्राचीन तक्षशिला के समीप स्थित 77 ई. के इस अभिलेख में प्राकृतभाषाएँ बुद्ध के देहावशेष प्रतिष्ठित कराने का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उल्लेख है। (7) सातवाँ कुषाण राजा का 'पंजतार प्रस्तर अभिलेख' है, जिसकी भाषा 'प्राकृत' व लिपि 'खरोष्ठी' है। इसका समय 65 ई. है, और इसका विषय महाराजा कुषाण के शासनकाल में मोयिक द्वारा शिवमन्दिर के निर्माण तथा विदेशियों के भारतीयकरण का प्रमाण है।

ज्ञातव्य है कि अभिलेखों में संस्कृत का प्रयोग पहली-दूसरी शती के शक-शासकों के युग में यदा-कदा मिलता है। उनके पश्चिमी भारतीय पुरालेख और सिक्कों से सम्बन्धित-लेखों में आगे की दो शताब्दियों तक संस्कृत का प्रयोग प्राकृत के मिश्रण के साथ मिलता है। सातवाहन-शासकों के सारे अभिलेख प्राकृतभाषा में मिलते हैं।

सातवाहन-वंश के अभिलेख

इनमें नागनिका का नानाघाट गुहा-अभिलेख ई.पू. प्रथम शताब्दी के उत्तरार्द्ध में लिखित प्राकृतभाषा का अभिलेख है, जिसमें सातवाहनों के समय दक्षिण-भारत के राजनैतिक, धार्मिक एवं आर्थिक अवस्था का उल्लेख है।

गौतमीपुत्र शातकर्णी का नासिक-गुहालेख

यह दो अभिलेख नासिक महाराष्ट्र में उपलब्ध हुए हैं, जिनकी भाषा प्राकृत एवं समय 106-30 ई. लगभग है।

वाशिष्ठीपुत्र पुलमावि का नासिक गुहालेख

इसका समय लगभग 141 ई. है। प्राकृतभाषा में लिखित शिलालेख में पुलमावि की माता द्वारा गुहावासदान का उल्लेख है।

पूर्वी-भारत के दूसरी शती के पुरालेखों में आर्य विश्वामित्र का केलवन (जिला पटना, बिहार) (समय 186 ई.) मिश्रित प्राकृत-संस्कृत में है। इसीप्रकार दूसरी-तीसरी शती के कौशाम्बी के राजाओं के लेख संस्कृत में लिखे गए तथा उन पर प्राकृत का अत्यल्प प्रभाव है।

दक्षिण-भारतीय अभिलेख

परन्तु दक्षिण-भारतीय बहुसंख्यक-अभिलेखों से यह स्पष्ट होता है कि वहाँ राजदरबारों में प्राकृत चौथी शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक बराबर लोकप्रिय रही। यहाँ के 'शालकायन वंश' के प्रारंभिक अभिलेख साहित्यिक-शैली की प्राकृत में है। इनको चौथी शती में रखा जा सकता है। कदम्ब-शासक मयूरशर्मन का चौथी-शताब्दी का 'चन्द्रवल्ली लेख' साहित्यिक प्राकृतभाषा में लिखा गया है। इसीप्रकार शिवस्कन्दवर्मन (चौथी शती का मध्यभाग) की 'मयोदवोलु' और 'हिरहदगल्ली'-पट्टिकायें साहित्यिक प्राकृत में लिखी गयी हैं। परन्तु उनसे सम्बद्ध मुहरों के लेख संस्कृत में हैं। स्कन्दवर्मन के समय (चौथी शती के अन्तिम-चरण) की 'गुनपदेय ताम्र-पट्टिकाएँ भी साहित्यिक प्राकृत में मिली हैं,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परन्तु उनके अंत में शापवाचक और आशीर्वाचक —दो संस्कृत-पद्य हैं। इसप्रकार 'दक्षिण भारतीय पुरालेख-विद्या' में चौथी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में संस्कृत द्वारा प्राकृत का स्थान ग्रहण किया गया माना जा सकता है।

मध्यकालीन अभिलेख

मध्यकालीन जैन-अभिलेख प्राकृत में है, जिनमें **प्रतिहार कक्कुक का 862** ई. का एक स्तम्भ पर टंकित इस अभिलेख में प्रतिहार-वंश की उत्पत्ति एवं नामावली के साथ राजा कक्कुक ने एक विशाल हाट-बाजार बनवाकर अपनी कीर्ति का विस्तार किया। मध्यकालीन कतिपय संस्कृत-लेखों में भी प्राकृत के नमूने मिलते हैं। एक अभिलेख लिखावट में **परमार भोज** (1000-55 ई.) के **धार के अभिलेखों** से बहुत साम्य रखता है। इसमें प्राकृत के विभिन्न प्रकार के नमूने हैं। धार के उपर्युक्त अभिलेखों में **कूर्मशतक** नामक प्राकृत-काव्य-ग्रन्थ से उद्धरण दिया गया है। यह ग्रन्थ परमार भोजकृत माना जाता है।

उपरोक्त सभी अभिलेखों के उल्लेख विभिन्न राजवंशों द्वारा प्राकृतभाषा को प्रदत्त राज्यश्रय तथा जनसामान्य से प्राप्त लोकप्रियता के सबल-प्रमाण हैं। ❖❖

बौद्ध-दर्शन तथा अन्य भारतीय-दर्शन

'नास्तिक' और 'आस्तिक' नामों के प्रयोग के भीतर कोई गम्भीर विचारधारा नहीं है। वेद ही समग्र भारतीय-दर्शन नहीं है, अत: उसके आधार पर भारतीय-दर्शन का वर्गीकरण भी नहीं किया जा सकता। जिसप्रकार भारतीय दर्शन के विदेशी विद्यार्थी एक तटस्थ-द्रष्टा की तरह हमारी विचार-परम्पराओं को देखते हैं और उनका अध्ययन करते हैं, वैसा हम सम्भवत: नहीं कर सकते। हमारे हृदय के साथ उनका संयोग है और उनके अध्ययन का महत्त्व हमारे लिए केवल बौद्धिक न होकर रचनात्मक भी है। हमें भारतीय-दर्शन को जीवन में उतारना है; क्योंकि हम उसके प्रतिनिधि हैं। अत: इस आस्तिकवाद-नास्तिकवाद की खोखली आधार-भूमि की निर्मम-समीक्षा हमें करनी ही पड़ेगी।" —*(बौद्धदर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन, प्रथम भाग, पृ. 188)*

"वेद-प्रामाण्य को हिन्दूधर्म का अव्यभिचारी-लक्षण भी माना और बौद्धों और जैनों को हिन्दूधर्म की परिधि के अन्दर भी लाने का प्रयत्न करना, ये दोनों काम साथ-साथ नहीं चल सकते। हमें अधिक उदार बनाने की आवश्यकता है। धर्म को छोड़कर हमें तात्त्विक-धरातल पर आना ही पड़ेगा और इस भूमि पर बैठकर ही हम देख सकेंगे कि 'नास्तिक' और 'आस्तिक्य' का विभेद वेद-प्रामाण्य के आधार पर करना बिल्कुल अनुपयुक्त है और इसमें आवश्यक-संशोधन की आवश्यकता है। सच बात तो यह है कि केवल जड़वादी चार्वाक दर्शन को छोड़कर और किसी भारतीय दर्शन को 'नास्तिक' कहा नहीं जा सकता।" —*(वही, पृ. 189)* ◆◆

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पज्जावरण-रक्खणा (पर्यावरण रक्षण)

—डॉ. उदयचन्द्र जैन

एस दिव्व-देसणा	यही है दिव्य-देशना
पुढवी-जल-एसणा	पृथ्वी-जल-एषणा
अगगी-रुक्ख-रक्खणा	अग्नि-वृक्ष की रक्षा का
वाऊ-वंत-वंतणा	बहती वायु की
लक्खणा परमप्पणा	देख-भाल, परम,
अप्प-सुद्ध-सुद्धिणा	करें आत्मिक शुद्धभावना से
पुप्फदंत-भूदिणा	भूतबलि पुष्पदंत
कुंदकुंद-सूरिणा	कुन्दकुन्द सूरि संतों की
अप्प-विसुद्धिणा	आत्म-विशुद्धि-भावना से
मंहणिज्ज जण-जणा	महनीय जन-जन की
सिद्धरूव-वंदणा	सिद्धरूप-वन्दना
अणुण्वदीण धारणा	अणुव्रतधारियों की यही धारणा
पारणा आराहणा	पारणा-आराधना
देहसुद्धि-सुद्धणा	देहशुद्धि-शुद्धता है
अप्परूप-लक्खणा	आत्मरूप की खोजरूपी
हि लक्खणा सुलक्खणा	लक्षणा भी सुलक्षणा
जदि-वदी-रिसि-गणा	यति, व्रती ऋषिगण
मुणिंद सूर-सूरिणा	मुनि, मुनीन्द्र सूरि भी
कहेंति सव्व-छंदणा	कह रहे छंदना
रक्ख रक्ख भावणा	रक्ष रक्ष भाव हो
अणंत-जीव-रासिणा	अनंत जीव-राशि का
भासि-भासि-भासिणा	भाषता भी भाषना
पदेय गच्छ-गच्छिणा	प्रत्येक गच्छ-गच्छ से
सुदेण सम्म-अज्झयणा	श्रुत के उचित अध्ययन से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बम्ही-बम्हरूविणा	ब्राह्मी का ब्रह्मरूप
अक्खराण अक्खिणा	अक्षरों के अक्ष से
सुंदरी अंकिणा	सुन्दरी के अंक से
उमा-रमा-सुलक्खणा	उमा-रमा-सुलक्षणा।
चंदणा वि अंजणा	चंदना भी अंजना
बाल-बालिगाधणा	बाल-बालिकाओं के
जणा जणा मणा मणा	जन-जन के मन बसे
पज्जावरण-रक्खणा	पर्यावरण की रक्षणा। ❖❖

सच्चे भक्त की प्रार्थना

'नास्था धर्मे न वसुनिचये नैव कामोपभोगे।
यद्भाव्यं तद्भवतु भगवन् ! पूर्वकर्मानुरोधात्।।
एतत्प्रार्थ्यं मम बहुमतं जन्मजन्मान्तरेऽपि।
त्वत्पादाम्भोरुहयुगगता निश्चला भक्तिरस्तु।।

अर्थ :— हे भगवान् ! मेरी न धर्म में, न अर्थ में आस्था है, भूमण्डल राज्य की चाह भी नहीं है तथा काम (स्पर्शन और रसना इन्द्रिय) भोग (घ्राण, चक्षु और श्रोत्र) —इन पाँच इन्द्रियों से सम्बन्धित उपभोग की आशा भी नहीं करता हूँ। हे भगवन् ! पूर्तकर्मों के अनुसार जो कुछ भी होनेवाला है, वह हो। आपके चरणकमलों में मेरी अविचल भक्ति जन्म-जन्मान्तरों में भी बनी रहे —यही एक प्रार्थना है। ◆◆

शत्रु को जीतने का तरीका

जीवन्तु मे शत्रुगणाः सदैव —*(चाणक्य)*

राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन अपने मित्रों के प्रति जितने विनम्र एवं मधुर थे, शत्रुओं के प्रति उतने ही उदार एवं सहृदय थे। अनेक बार शत्रुओं को वे मित्र की तरह घर बुलाते, उनके साथ बातचीत करते और बड़ा ही स्नेह प्रदर्शित करते।

लिंकन की यह नीति और व्यवहार उनके मित्रों को पसन्द नहीं आया। एक बार एक मित्र ने झुँझलाकर लिंकन से कहा— "आप अपने शत्रुओं के साथ मित्र की तरह व्यवहार क्यों करते हैं, इन्हें तो खत्म कर डालना चाहिए।"

मधुर मुस्कान के साथ लिंकन ने उत्तर दिया— "मैं तो तुम्हारी बात पर ही चल रहा हूँ, शत्रुओं को खत्म करने में ही लगा हूँ ! हाँ, तुम उन्हें जाने से मार डालने की बात सोचते हो और मैं उन्हें मित्र बनाकर।" शत्रुता को मित्रता में बदलने का, कटुता को मधुरता में बदलने का कितना सुन्दर तरीका था यह। ◆◆

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विण्णाणं किं? भूयं पजोगं

—*प्रभात कुमार दास*

मज्झम्मि दिण्ण-दिट्ठी अण्णाणस्स वि पस्सदि णाणं।
जह णिक्कसदि सूरिओ अंधआरम्मि पयासं।। 1।।

अर्थ :— जैसे सूर्य अंधकार के बीच में ही अपने प्रकाश (रोशनी) को निकालता है, वैसे अज्ञानता से भरी दुनिया में जो दृष्टि को सही रास्ते पर रखता है, उसे ज्ञान दिखाई देता है।

णाणं विज्जदि त्ति जणो जह जाणदि।
तह अणुभवदि जणो णाणं त्ति भणदि।। 2।।

अर्थ :— जैसे 'ज्ञान है' —यह लोक मानता है, उसीप्रकार ज्ञान को अनुभव करता है, ऐसा लोक कहता है।

विण्णाणं किं ति पण्हमुत्तरदि सरस्सदी।
जो दिण्ण-दिट्ठीए हि करेदि भूयं पजोगं।। 3।।

अर्थ :— विज्ञान क्या है? इस प्रश्न के उत्तर में सरस्वती (देवी) कहती है कि, जो ज्ञान में दत्तदृष्टि (व्यक्ति) से बारम्बार/हमेशा प्रयोग करता है।

विण्णाणं जाणिदुं पारदि सो उल्लविदुं य।
तरदि णाणम्मि मज्झम्मि मीणो जलस्स व्व।। 4।।

अर्थ :— वह विज्ञान को जान पाता है, और बता पाता है, जो ज्ञान के बीच में जल में मीन के समान सन्तरण करता है।

जं ण किद-पयासो पावदि तिहुयणभमणेण।
तं किद-पयासो अयाले णाणम्मि पासदि।। 5।।

अर्थ :— जिस (अनुभव) को त्रिभुवनभ्रमण में प्रयासरत होकर (व्यक्ति) नहीं पाता है, उसे ज्ञान में प्रयास कर वह देख सकता है।

स णरो व णरो होइ सया ठिदो संति जस्स।
आचारमणुसरदि सूरिओ व चंदो व्व य।। 6।।

अर्थ :— वह मनुष्य की तरह मनुष्य है जिस की (मन में) सदा शांति रहती है और जो सूर्य और चन्द्र के समान आचारों का अनुसरण करता है। ❖❖

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बंकापुर के जिनालय

—अप्पण्ण नरसप्पा हंजे
टी.आर्. जोडट्टी

कर्नाटक के सांस्कृतिक इतिहास की खोज के संदर्भ में, उपयुक्त-संसाधन प्रदान करने में अनेक ग्रामों का योगदान महत्त्वपूर्ण है। ऐसे ग्रामों में 'बंकापुर' का नाम विशेष-उल्लेखनीय है। यह बंकापुर 'हावेरी' जिला में स्थित है। तहसील 'शिग्गांव' की दक्षिण-दिशा में दस किलोमीटर दूर पर पूना-बेंगलूर राष्ट्रीय-मार्ग पर स्थित है। जैनधर्म के इतिहास में बंकापुर को एक विशेष और गौरवपूर्ण-स्थान प्राप्त है। शिलालेखों में वंकपुर[1], वंकापुर[2], बंकापुर[3], बंकपुर[4], बंकापुर[5], बंकाहुर[6] और साहित्यिक कृतियों में वंकापुर[7], वेंगापुर[8], बेंकिपुर[9] आदि नामों से परिचित है। पुराण-संबंधी परम्पराओं के अनुसार 'द्वापरयुग' तक इसकी प्राचीनता दिखाई देती है। पांडवों के चौदहवें वर्ष के अज्ञातवास के समय में भीमसेन ने यहाँ के एक राक्षस का संहार किया था। —ऐसी एक लोककथा आज भी प्रचलित है।

लगभग पाँचवीं सदी से बारहवीं सदी तक यह ग्राम जैनधर्म का पुण्यक्षेत्र और प्रसिद्ध विद्याकेन्द्र था। इसका इतिहास बादामी-चालुक्य के समय से प्रारंभ होने पर भी राष्ट्रकूट के समर्थ-दंडनायक निष्ठावान् महासामन्त चेल्लकेतन के समय में प्रसिद्ध जैन-केन्द्र बन गया। इस घराने के प्रख्यात-राजा लोकारिय ई.स. 895-946 में अपने पिता बंकेय के नाम से इस ग्राम को 'बंकेय का पुर' या 'बंकापुर' नाम रखा। इनके बेटा प्रथम कलिविट्ट (लगभग ई.स. 904-929) और पोता द्वितीय कलिविट्ट लगभग इस 945 में बंकापुर जिन-मन्दिर बना दिया। वीरसेन जी के शिष्य जिनसेनाचार्य जी (लगभग ई.स. 753-838) ने 'पूर्वपुराण' की रचना की। कहा जाता है कि इसके अगले-भाग 'उत्तरपुराण' की रचना गुणभद्राचार्य जी के द्वारा बंकेय के द्वितीय पुत्र लोकादित्य के समय में बंकापुर के त्रिषष्ठी स्तंभवाले जिनालय में ई.स. 898 में पूर्ण हुई।[10] जैनधर्म के इतिहास में इन दोनों से पहचाना जाता है कि कन्नड़-प्रदेश में संस्कृत में रचित इस प्रथम कृति को हाथी पर अलंकृत कर गुणभद्र आचार्य के शिष्य लोकसेन यति ने जुलूस निकलवाया।[11] कन्नड़-साहित्य के इतिहास में आदिकवि पंप द्वारा रचित 'आदिपुराण' का स्रोत यही ग्रंथ है। राष्ट्रकूट-परिवार के प्रख्यात राजा अमोघवर्ष नृपतुंग (ई.स. 815-817) समय-समय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर जिनसेनाचार्य जी के पास जाकर अपने शासनकार्य में मार्गदर्शन पाते थे। यह विषय 'संजान ताम्रपट-शासन' से मालूम होता है।[12] जिनसेनाचार्य जी द्वारा रचित 'पार्श्वाभ्युदय' नामक काव्य से पता चलता है कि वे अमोघवर्ष के गुरु थे।

इति विरचितमेतत्काव्यमावेष्ट्य मेघं। बहुगुणमपदोषं कालिदासस्य काव्यं।।
मलिनित-परकाव्यं तिष्टतादाशशांकं। भुवनमवतु देवस्सर्वदामोघवर्ष:।।

कालिदास के 'मेघदूत' काव्य के आधार पर रचित माधुर्य आदि अनेक गुणों से युक्त दोषरहित यह काव्य अचंद्रार्क अन्य काव्यों को गौण करके सर्वोत्कृष्ट रहे। राजा अमोघवर्ष सदा पृथ्वी की रक्षा करते रहें।[13] इस पद्य से और गुणभद्राचार्यजी के 'उत्तर पुराण' का— **यस्य प्रांशुनखांशु-जाल-विसरद्धारांतराविर्भव-**
त्पादाम्भोजरज: पिशंग-मुकुट-प्रत्यग्ररत्नद्युति:।।
सरिस्मर्ता स्वममोघवर्षनृपति: पूतोहमद्येत्यलम्।
स श्रीमान् जिनसेनपूज्य-भगवत्पादो जगन्मंगलम्।।

जिसके उन्नत-नाखूनों की किरणों से फैलते हुए प्रकाश की धाराओं से आविर्भावित चरणकमल की धूलि से राजा अमोघवर्ष का मुकुट पवित्र माना जाता है। तथा जिनसेनाचार्यजी के दर्शन से आज का दिन पवित्र बन गया।[14]

अजितसेनाचार्यजी की तरह गुणभद्राचार्यजी ने अपने 'उत्तरपुराण' में अपने शिष्य राष्ट्रकूट के अकालवर्ष (द्वितीय कृष्ण) और चल्लकेतन घराने के लोकादित्य के शासन के समय में अपने पुराण-ग्रंथ की रचना पूर्ण होने के बारे में लिखा है।[15]

लगभग ई.स. दसवीं सदी में अजितसेनाचार्यजी द्वारा जो गुरुकुल प्रारंभ हुआ, वह अनेक धर्मवीर, दानवीरों का एक विश्वविद्यालय हो गया था।[16] इस गुरुकुल में ही कविचक्रवर्ती रन्न (ई.सा. सन्. 993) ने अजितसेनाचार्य जी के शिष्य होकर अपने विद्याभ्यास पाने का विषय 'अजितपुराण' में लिखा है। श्रवणबेळगोळ के विंध्यगिरि पर्वत पर शोभायमान गोम्मटेश्वर की महामूर्ति के निर्माता चावुंडरायजी (ई.स. 978) अजितसेनाचार्यजी के दर्शन के लिए 'बंकापुर' आया करते थे। आपने अपने 'त्रिशष्टिलक्षण महापुराण' में (ई.स. 978) अजितसेनाचार्यजी की स्तुति करते आपको 'भवगुरु' कहा है। आपकी तरह आपके पुत्र जिनदेव भी अजितसेनाचार्य के पुत्र थे।[17] बंकापुर के मुनिसंघाधिपति सद्गुणों के खान सिद्धांत और आगमविशारद, सम्यग्ज्ञान-गुणान्वित देवेंद्रमुनीजी को—

बंकापुर मुनींद्रोऽभूद्देवेंद्रोरुंद
सद्गुण सिद्धांता द्यागमार्त्थज्ञो
स ज्ञानादि गुणान्वित

कहकर श्रवणबेळगोळ का एक कन्नड़-शिलालेख परिचय कराता है।[18] गंगवंशभूषण मारसिंह जी ने एक वर्ष पहले ही सिंहासन छोड़कर—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

· बंकापुरदोळजितसेनभट्टारकर श्रीपाद
सन्निधियोळाराधना विधियं मूरु देवसां
नोन्तु समाधियं साधिसिदं।

बंकापुर में अजितसेनाचार्य जी के चरणकमलों में सल्लेखना-व्रत धारण करके तीन दिन तक उपवास रहकर समाधिमरण प्राप्त किया।[19] यह संदर्भ उस समय में अजितसेनाचार्यजी के प्रति राजा-महाराजाओं की पूज्य-भावना का प्रतीक है। प्रसिद्ध और प्रामाणिक 'चन्दोम्बुधि' के कर्तृ प्रथम नागवर्म (ई.स. 990) भी अजितसेनाचार्यजी के शिष्य थे। आपने अपनी उपर्युक्त रचना के मंगलाचरण में अपने गुरु अजितसेनाचार्यजी का स्मरण किया है। इसीप्रकार और एक शिष्य मुळगुंद के मल्लिसेण ने भी (ई.स. 1050) अपनी कृतियों में अजितसेनाच्चार्यजी का स्मरण किया है।[20] लगभग ई. सन् पाँचवी सदी में जब पूज्यपादजी विदेहक्षेत्र के श्रीमंधरस्वामी के दर्शन करके बंकापुर आये थे, तब धूप के कारण से आपकी आँखों की रोशनी कम हो गयी थी। उस समय आपने बंकापुर के शांतिनाथ तीर्थंकर के दर्शन करके इस तीर्थंकर के नाम पर ही 'शान्त्यष्टक' की रचना करके खोई हुई आँखों को वापस पाया, —यह संदर्भ देवचन्द्र के 'राजावळि कथासार' में प्रस्तुत हुआ है।[21]

इसप्रकार जैनधर्म का पुण्य क्षेत्र, तीर्थक्षेत्र, जैनाचार्यों की तपोभूमि, जैन विद्वानों का निवास, प्रसिद्ध राजाओं की उपराजधानी आदि से गौरव प्राप्त बंकापुर में—

"यस्मिन् जिनेन्द्र पूजा प्रवर्ततेऽत्र तत्र देश परिवृद्धिः।
नगराणां निर्भयता तद्देश स्वामिनांचेर्ज्जा नमो नमः।।"

जिस देश में जिनेन्द्र की पूजा होती है, उस देश की वृद्धि होती है, नगर निर्भय रहते हैं, राजा ऊर्जित बन जायेंगे[22] —ऐसी प्रेरणा से कई जिनालय निर्मित हुए। शिलालेखों के आधार पर जिनालयों का वर्णन विशिष्ट है।

गदन जिला के उडचव्व मंदिर के पीछे स्थित राष्ट्रकूट नित्यवर्ष चैथे गोविंद द्वारा रचित ई.स. 925 के शिलालेख में बंकापुर में धोरजिनालय के आचार्य भट्टारक जी पसुंडि (असुंडि) का शासन करते समय नागपुलि के गावुंड नागय्या ने अपने द्वारा निर्मित मंदिर को भूदान किये हुए संदर्भ का विवरण प्राप्त होता है।[23] 'एपिग्राफिया कर्नाटिका' (द्वितीय) के आमुख में कहा गया है कि असुंडि के शिलालेख में वर्णित बंकापुर का धोर जिनालय हुळ्ळ से बंकापुर में जीर्णोद्धार किये गए जिनमन्दिरों में एक होगा। इसके अलावा डॉ. एस्. शेट्टर जी ने कहा है कि बंकापुर में जिन दो जिनालयों का जीर्णोद्धार करवाया गया है,[24] उनमें एक 'धोर जिनालय' होना संभव है। इससे सिद्ध होता है कि बंकापुर में 'धोर' नाम का एक जिनालय था। समझा जाता है कि यह जिनालय राष्ट्रकूट के महासामंत चल्लकेत परिवार के एक प्रतिष्ठित राजा द्वारा निर्मित किया गया था। इस परिवार में 'धोर' नाम के तीन राजा मिलते हैं। उनमें इस परिवार का मूलपुरुष प्रथम धोर (बंकेय के पिता) बंकेय का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तृतीय सुपुत्र द्वितीय धोर[25] और बंकेय के पोता और लोकादित्य के सुपुत्र तृतीय धोर। इनमें द्वितीय धोर[26] (इ.स. 915) इस परिवार में बहुत ही प्रसिद्ध था। इसलिए यह जिनालय आपके समय में ही निर्मित हुआ होगा। डॉ. अ. सुंदरजी[27] कहते हैं कि इ.स. 925 ई. में यह जिनालय बन चुका था। बंकापुर किला के परकोटा के अंदर स्थित 'एल्लम्मा देवालय' के गर्भगृह के द्वारबन्ध के चौकाकार मंगल-फलक पर एक जिनबिंब रहा होगा, कालांतर में उसे निकाल दिया गया है। इस मंगल-फलक के ऊपरी भाग में छत के समान दिखाई देनेवाली रचना प्राय: 'मुक्कोडे' का एक भाग रहा होगा। अगर यह सही हो, तो इसके नीचे निश्चित ही जिनबिंब था। शायद यह द्वारबंध उपर्युक्त जिनालय का रहा होगा। इस प्रदेश में ही तीर्थंकर की मूर्तियाँ प्राप्त होने के कारण से यह कल्पना सही लगती है।

बंकापरु के कोट्टिगेरि प्रदेश में श्री हनुमंतप्पा गिरिमालजी 1975 ई. में अपने लिए नये घर के निर्माण के संदर्भ में नींव खोदते समय एक पार्श्वनाथ तीर्थंकर की मूर्ति और एक चौबीस तीर्थंकरों की मूर्ति प्राप्त हुई है।[28] अब ये मूर्तियाँ धारवाड़ जिला के हुब्बळ्ळी के 'शर्मा इन्स्टीट्यूट' में स्थित सर्वेक्षण-कार्यालय के सामने हैं। लगभग बारहवीं सदी की चौबीस तीर्थंकर की मूर्ति के चरणपीठ पर कन्नड़-शिलालेख इसप्रकार है—

श्रीमूलसंघद सूरस्तगणद श्रीणंति भ-
ट्टारक देवर सिष्य बाळचंददेवर प्रेम (द)
गुड्डनु जिंजिय बामयन मग लखय
नु निट्टसंगिय बसदिगे माडिद चौव्वीस तीर्थंकर देवरु।
मंगळ महा श्री श्री श्री।

इस उल्लेख के अनुसार मालूम होता है कि 'निट्टासिंगिय जिनालय' को मूलसंघ-सूरस्थगण के श्रीनंदिभट्टारक देव के शिष्य बाळचंददेव के शिष्य जिंजिय बामय्य के बेटे लखमय (लख्खय्य) ने इस चौबीस तीर्थंकर की मूर्ति का निर्माण करवाया। इससे सिद्ध होता है कि लगभग ई.स. 11-12वी सदी में किला के अंदर निट्टिसिंगि नाम का जिनालय था।

हानगल तहसील के मंतगी ग्राम की 'धर्मा' नदी के तीर पर स्थित लगभग ई.स. बारहवीं सदी के शिलालेख के अनुसार कल्याण चालुक्य के महासामंत हानगल और बंकापुर के कदंब-परिवार के हरिकेसरीदेव, हरिकांतदेव और तोयिमदेव —इन तीनों राजाओं ने मिलकर कई जिनमंदिरों को दान देते समय बंकापुर के कोंतिमहादेवी जिनालय को भी दान दिया।[29] इस आधार से निश्चित होता है कि बंकापुर में 'कोंतिमहादेवि' नाम का एक जिनालय था।

श्रवणबेळगोळ के भंडारी-जिनालय के पूर्वभाग में स्थित 1159 ई. के कन्नड़-शिलालेख में लिखा गया है कि—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निप्पटमे जीर्णमादुद, नुप्पट्टायतन महाजिनेंद्रालयमं।
निप्पोसतु माडिदं कर, मोप्पिरे हुळळं मनस्वी बंकापुरदोळ।।

दृढ़संकल्पी हुळळ ने (वाजीवंश के यक्षराजा लोकांबिका के सुपुत्र होय्सळ-राजपरिवार के विष्णुवर्धन, नारसिंह और राज इम्मडी बल्लाळ के भंडारी तथा महाप्रधान थे) बंकापुर में शिथिलावस्था में स्थित 'उपट्टायतन' (उरिपट्टायण) नाम के जिनालय का जीर्णोद्धार करवाया। बाद में यह मंदिर नवनिर्मित-सा दिखाई देने लगा।[30] इससे स्पष्ट होता है कि बंकापुर में 'उरिपट्टायण' नाम का एक जिनालय था। इसी कन्नड़-शिलालेख में आगे लिखते हैं— कलितनमं विटत्वमुमनुळळवनादियोळोर्व्वनुर्वियेळ्,
कविविटनेंबनातन जिनालयमं नेरजीर्णमादुदं।
कलिसले दानदोळ्परम सौख्यरमारतियोळवटं विनिश्चल,
मेनिसिद्र्दे हुळळनदनदत्तिसिदं रजताद्रितुंगमं।।

कलितन और विटत्ववाले कलिविट ने बंकापुर में इससे पहले ही एक जिनालय का निर्माण करवाया था। यह पूरी तरह नष्ट हो गया था। दृढचित्त, दानशूर और मोक्षलक्ष्मी के इच्छुक हुळळ ने इस जिनालय का जीर्णोद्धार करवाया। इतना ही नहीं, 'हानगल' तहसील के 'मंतगी' ग्राम का शिलालेख[31] भी इस जिनालय तथा भूदान का विवरण देता है। इन सभी आधारों पर यह सिद्ध होता है कि बंकापुर में 'कलिविट' नाम का एक जिनालय था। समझा जाता है कि यह जिनालय भी चल्लकेतन परिवार के समय में ही निर्माण हुआ था। इस परिवार में 'कलिविट्ट' नाम के दो राजा थे। लोकादित्य के पुत्र प्रथम कलिविट्ट[32], द्वितीय बंकेय के बाद शासन किए हुए लोकादित्य के पौत्र द्वितीय कलिविट्ट[33], इनमें कालमान की दृष्टि से लोकादित्य के पौत्र राजा द्वितीय कलिविट्ट ने ही इस जिनालय का निर्माण करवाया था।

कहा जाता है कि गुणभद्राचार्यजी ने अपने 'उत्तरपुराण' की रचना 63 स्तंभवाले जिनालय में पूर्ण की थी। आज किला के परिसर में पश्चिमाभिमुख स्थित 'नगरेश्वर देवालय' ही वह जिनालय रहा होगा। इस देवालय के महामण्डप में 60 स्तंभ होने के कारण से स्थानीय लोग इस देवालय को 'साठ स्तंभवाला देवालय' कहते हैं। इस देवालय के चार शिलालेखों में अत्यंत प्राचीन शिलालेख का समय 1093 ई. है। इसमें नकरेश्वर देव के नंदादीप को और अन्य पूजा के लिए दान का विषय वर्णित है।[34] इससे मालूम होता है कि इस देवालय का सन् 1903 ई. से पहले ही निर्माण हुआ था। इस देवालय की वास्तुकला, देवकोष्ठी आदि इसके साक्ष्य हैं। लेकिन साठ स्तंभवाले महामण्डप की रचना बाद में हुई है। 1178 ई. का शिलालेख साक्ष्य है।[35] प्राय: यही मूल- जैनमंदिर रहा होगा, यही मंदिर लगभग 11-12 सदी में शैव-देवालय में परिवर्तित हुआ होगा। लेकिन इसके लिए और भी आधारों की आवश्यकता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसप्रकार एक समय में जैनधर्म का पुण्यक्षेत्र होकर, जैनाचार्यों की तपोभूमि होकर प्रसिद्ध राजपरिवारों के समय में निर्मित जिनालयों का खजाना माने जानेवाला यह बंकापुर अनेक आक्रमणों से जर्जरित होकर अपने यहाँ के जिनालयों को खोकर, सिर्फ उनके नामों से परिचित होकर बना रहा है। देवालयों के विध्वंसनकार्य रूपांतरक्रिया, समूलनाशक्रिया और नाश की कोशिश —इन तीन क्रियाओं द्वारा घटे होंगे। अथवा किसी कारणवश सामूहिक मतांतरित इस ग्राम के लोक अपने देवालय निष्प्रयोजक न रहें —इस विचार से अपने आप ही इन देवालयों में परिवर्तन किए होंगे। देवालयों की समूलनाश-क्रिया और नाश करने की कोशिशों के लिए मतद्वेष के कारण होने पर भी कभी-कभी वाद-स्पर्धाओं में हार भी कारण बन जाता है।[36]

जैनधर्म को अधिक महत्त्व देकर, आश्रय देकर अपना राजधर्म बना लिये गंग, राष्ट्रकूट, चल्लकेतन और रट्ट आदि राजपरिवार नष्ट होने के बाद जैनधर्म को राजाश्रय नहीं मिला। इससमय में शैव, वैष्णव, भक्ति आंदोलन और मुसलमानों का आक्रमण हजारों जिनालयों के नष्ट होने के कारण बन गए। यहाँ के शिलालेख इसके साक्ष्य हैं। अहिंसा के आराधक अल्पसंख्यक जैनसमाज ने ऐसे अतिक्रमणों के प्रति प्रतिकार या अन्यदेवालयों को नाश करना आदि विनाश के कार्य नहीं किए हैं। उसने दूसरों के द्वारा विनष्ट जिनालयों का जीर्णोद्धार किया है। इसका साक्ष्य है यह कन्नड़ शिलालेख—

स्थिरजिनशासनोद्धरणरादियोळारेने राचमल्ल भूवर,
वरमंत्रिरायने बळिक्के बुधस्तुतनप्प विष्णुभूवर।
वरमंत्रि गंगणने मत्ते वळिक्के नृसिंहदेव भूवर,
वरमंत्रि हुळ्ळने पेरंगिनितुळ्ळड पेऽळ्ळलागदेऽ।।

चावुंडराय (तलकाडु गंगराज इम्मडि मारसिंह और नाल्मडि रेचमल्ल के मंत्री) गंगराजा (होय्सळ विष्णुवर्धन के दण्डनायक) और हुळ्ळराजा (होय्सळराजा विष्णुवर्धन, नारसिंह, इम्मडि बल्लाळ के भंडारि और महाप्रधानी) ऐसे कार्य करने में प्रसिद्ध हो गए हैं।[37] इतना ही नहीं और भी अनेक दानशूर, समाजसेवकों ने जीर्णोद्धार के कार्य किये हैं, ऐसे कार्यों का विवरण देनेवाले अनेक शिलालेख मिलते हैं।

ऐसे निरंतर आक्रमणों से भयभीत लोग अपनी भौतिक-संपदा लेकर गाँव छोड़ते समय अपने देवी-देवताओं की मूर्तियों को जमीन में छिपाकर जाते थे। ऐसी घटनाओं को देखकर ही महान् दार्शनिक श्री बसवेश्वर जी ने 'अंजिके बंद्रे हूळुव दैव'[38] कहा है। इसीतरह बंकापुर के कोट्टिगेरि प्रदेश में भूम्यंतर्गत पार्श्वनाथ और चौबीस तीर्थंकरादि मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं।

इसप्रकार विनाशित बंकापुर के जिनालयों के भग्नावशेषों का उपयोग अन्य देवालयों के निर्माण में किया गया है। इसके कई निदर्शन मिलते हैं। आज कल का 'मागीकेरि' प्रदेश उस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जमाने में जैनधर्म के अनुयायियों का 'महावीरकेरी' रहा होगा। इस प्रदेश में व्यवस्थितरूप से उत्खनन-कार्य करने से अनेक जैनवास्तु-शिल्पावशेष प्राप्त हो सकते हैं।

सन्दर्भ-सूची :—

1. एस.आई.आई., सं XVIII, हशा.सं. 80। **2.** आई.ए., सं. XXXII, पृष्ठ 22। **3.** ए.क., सं. III, शा.सं. 74। **4.** एस.आय.आय., सं. XVIII, शा.सं. 139, ई.स. 1137। **5.** वही, सं. XI, शा. सं. 34, ई. स. 925। **6.** एम.ए.आर., 1926, शा.सं. 19। **7.** ए. शांतिराज शास्त्री (सं), भगवद्‌गुण भद्राचार्य विरचित 'उत्तरपुराण', सं. 2, प्रशस्ति-पद्य 34, पृ. 1127, ई.स. 1981। **8.** मुम्बई गेजेटियर्, पृ. 406। **9.** संस्कृत-कविचरित, पृ. 89। **10.** ए. शांतिराज शास्त्री (सं), वही, आमुख, पृ. XXIII, ई.स. 1981। **11.** मानविक कर्नाटक, सं. 16, सं. 1, पृ. 8, ई.स. 1985। **12.** ए.इ., सं. XVIII, पृ. 234, संजान, ता-ठाणा, जि-मुम्बई, ई.स. 871। **13.** कोठारी एम्.जी. (सं), श्री जिनसेनाचार्य विरचित 'पाश्र्वाभ्युदय', सर्ग 4, पद्य 70, पृष्ठ 418 ई.स. 1965। **14.** ए. शांतिराज शास्त्री (सं). वही, प्रशस्ति पद्य 9, पृष्ठ 1121-22, ई.स. 1981। **15.** वही, पद्य 31 से 36, पृष्ठ 1126-27, ई.स. 1981। **16.** ब्रह्मप्प जी., 'बंकापुर अजितसेन गुरुकुल', नंदनवन, हळ्ळि श्री राघवेंद्र स्वामि अभिनंदन ग्रंथ, पृष्ठ 189, ई.स. 1978। **17.** ए.क., सं. II, शा.सं. 64, ई.स. 995। **18.** वही, शा.सं. 64, ई.स. 1000। **19.** वही। **20.** पाटील एस.पी., अजितसेनाचार्य, राष्ट्रीय भावैक्य जैनधर्म मत्तु प्रबंधगळु, पृ. 66, ई.स. 1988। **21.** सण्णय्य बी.एस., (सं), देवचन्द्रन राजावळी कथासार, पृष्ठ 123, ई. स. 1988। **22.** कार्पस ऑफ कदम्ब इन्स्क्रिप्शन्स (1985), शा.सं. 24, ई.स. 5वीं सदी। **23.** एस.आई.आई., सं. XI-I, शा.सं. 34 ई.स. 925। **24.** शेट्टर ष., श्रवणबेळगोळ, पृष्ठ 72, ई.स. 1981। **25.** एस.आई.आई., सं. XVII-I, शा.सं. 19, ई.स. 915-16, के आई., सं. II, सा.सं. 4, ई.स. 918। **26.** ए.आर.एस.आई.इ., 1949-50 शा.सं. 87, ई.स. 918, वही, 1933-34, शा.सं. 47, ई.स. 929, एस.आई.आई., सं. XVIII-I, शा.सं. 23, ई.स. 928। **27.** एलिगार चेन्नक्क, बंकापुर शोधन, पृष्ठ 140, ई.स. 1990। **28.** भूसरेड्डी एस.एस., बंकापुर, पृष्ठ 19, ई.स. 1976। **29.** ए.आर.एस.आइ.इ., 1947-48, शा.सं. 28। **30.** ए. क., सं. II, शा.सं. 476, ई.स. 1159। **31.** ए.आर.एस.आइ.इ., 1947-48 शा.सं. 28। **32.** एस.आइ.आइ., सं. XVIII, शा.सं. 17, ई.स. 928। आइ.ए., सं. XXXII, पृष्ठ 224। ए. क., सं. VII, शा.सं. 219, ई.स. 918। ए.आर.एस.आइ.इ., 1957-58, शा.सं. 269 ई.स. लगभग 9वीं सदी ए.क., सं. VIII, शा.सं. 240। एस.आइ.आइ., सं. XVIII, शा.सं. 24, ई.स. 928-29। **33.** वही, शा.सं. 30। वही, शा.सं. 24, ई.स. 928-29। ए.ई., सं. XVI, शा.सं. 22, ई.स. 945-46। ए.आर.एस.आइ.इ., 1941-42, शा.सं. 36, ई.स. 974। **34.** एस.आइ.आइ. , सं. XVIII, शा.सं. 99, ई.स. 1093। **35.** वही, शा.सं. 290, ई.स. 1178। **36.** कलबुर्गी एम. एम., 'प्राचीन कर्नाटकदल्लि देवालयगळ नाश', मार्ग सं. 3, पृष्ठ 31-40 ई.सं. 1998। **37.** ए.क., सं. II, शा.सं. 476, ई.स. 1159। **38.** कलबुर्गी एम.एम., वही, पृष्ठ 54।

❖❖

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आण्णासाहब लट्ठे जी का जैन-स्त्री-विषयक चिंतन और कार्य

—डॉ. पद्मजा आ. पाटील

आज के महाराष्ट्र का सामाजिक और शैक्षणिक जीवन तथा 19वी सदी का अंत और 20वी सदी के प्रारंभ में शुरू किए गए सामाजिक और राजकीय आंदोलन तथा स्त्री-विषयक संघर्ष का अटूट-संबंध है। हमें इस आंदोलन की खोजकर आज के स्त्री-जीवन के सामर्थ्यस्थान और खामियाँ जाँचकर देखनी चाहिए। बंगाल के ब्राह्मसमाज से प्रभावित होकर मुंबई में 'प्रार्थना समाज' स्थापित हुआ। हिंदू-समाजांतर्गत बहुजन-समाज के दु:खों को मुखरित करने के लिए महात्मा जोतिराव फुले जी ने 1873 ई. में 'सत्यशोधक समाज' की स्थापना की। जोतीराव जी के क्रांतिकारी विचारों का प्रचार और प्रसार दक्षिण-महाराष्ट्र में बड़े जोरशोर से हुआ। काँग्रेस-नेतृत्व के राष्ट्रीय सभा के राजकीय आंदोलन के साथ-साथ सामाजिक और धार्मिक आंदोलन में कुछ हद तक जातिवादी विचार-सरणि जड़ पकड़ने लगी। भारत के राजकीय प्रवाह में मुस्लिमों की 'मुस्लिम लीग' 1906 ई. में मुस्लिम सामाजिक आंदोलन के रूप में उभर आयी, तो कोल्हापुर के छत्रपति शाहूजी महाराज ने 'सत्यशोधक-समाज' के तत्त्वज्ञान को पुनरुज्जीवित कर मुंबई-इलाके में 1916 ई. में ब्राह्मणेतर-आंदोलन छेड़ा। ये दोनों आंदोलन 'स्वराज्य आंदोलन' से समानांतर कार्यरत रहे। अनायास अंग्रेज-राज्यकर्ताओं का बल इस आंदोलन के पीछे रहा। इसीके बलबूते पर लोकमान्य तिलक जी के नेतृत्व के 'स्वराज्य आंदोलन' को वे सहजता से शह दे सके।

1930 ई. के बाद महात्मा गांधी के राष्ट्रीय आंदालेन में ब्राह्मणेतर-आंदोलन मिट गया। फिर भी उससे जो नेतृत्व उभरा, उसके द्वारा ही आज के महाराष्ट्र का वैचारिक गठन हुआ है।

1920 ई. के पश्चात् ब्राह्मणेतर आंदालेन के तीन आविष्कार हमें दिखाई देते हैं। 1919 ई. की 'काले' (राड) के सत्यशोधक परिषद् में 'रैयत शिक्षण संस्था' की स्थापना कर कर्मवीर भाऊराव पाटील जी इस शैक्षणिक-प्रवाह के प्रतिनिधि बने। दूसरा प्रवाह राजकार्य की ओर मुड़ा। इसमें भास्करराव जाधव जी, शिक्षण मंत्री मुंबई इलाका (1923

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से 26), आ.बा. लट्ठेजी, अर्थमंत्री मुंबई इलाका (1937 से 1939) थे। तो तीसरा प्रवाह केशवराव जेधे जी के नेतृत्व में पारस्परिक सहयोग से ग्रामीण किसानों का आर्थिक शोषण रुकवाकर उनके विकास में लगा। स्वातंत्र्योत्तर काल में ग्रामीण महाराष्ट्र में 'शेतकरी कामगार पक्ष' पला और बढ़ा भी। 1942 का 'भारत छोड़ो' आंदोलन धीमा पड़ने पर निर्मित नेतृत्व महाराष्ट्र के राजकार्य में सक्रिय हुआ। इन्हीं आंदोलनों के उदय में ही कारण खोजने पड़ते हैं। 1960 के बाद ग्रामीण महाराष्ट्र में सामाजिक स्त्री-विषयक राजकीय और सहकारी आंदोलनों में इन सारे प्रवाहों का प्रभाव दिखाई देता है।

1911 को छत्रपति शाहू जी के नेतृत्व में कोल्हापुर-संस्थान में पुनरुज्जीवित 'सत्यशोधक आंदोलन' 1917 के 'माँटेग्यू घोषणा' की पार्श्वभूमि पर बहुजन-समाज के राजकीय अधिकारों के लिए संघर्ष करने लगा। इसका रूपांतर 'ब्राह्मणेतर आंदोलन' में हुआ। आंदोलन के इस माध्यम से ब्राह्मण-विरोधी एक नया सांस्कृतिक फसाद खड़ा हुआ। छत्रपति शाहू महाराजा के दृष्टिकोण में शुरू में यह विद्रोह 'वेदोक्त' प्रकरण की तहत वैयक्तिक-स्तर पर था। किंतु एक दशक में ही इस संघर्ष ने सामाजिक और राजकीय रूप धारण किया। राजोपाध्ये नामक ब्राह्मण पुरोहित ने स्नान के लिए छत्रपति शाहू जी को वेदोक्त-मंत्र नकारना यह तत्कालीन स्थितियों में छत्रपति को एक चुनौती ही थी। 1899 के आन्दोलनों में यह घटना घटी। परंतु छत्रपति शाहूजी ने ब्राह्मणेतर-नेतृत्व की खोज-प्रक्रिया शुरू की। ब्राह्मणों का शैक्षणिक और धार्मिक वर्चस्व हटाने के लिए ग्रामीण अशिक्षित और पददलित-समाज को शैक्षणिक सुविधाएँ उपलब्ध कराना आवश्यक था। अलग-अलग जाति-धर्मों के शिक्षित-युवकों को कोल्हापुर में बुलाकर उन्हें उनके समाज के सामाजिक और शैक्षणिक-प्रगति के लिए सर्वांगीण-सहायता करना तथा उनके नेतृत्व का अपने सामाजिक और शैक्षणिक-आंदोलन में उपयोग करना छत्रपति शाहू जी का प्रमुख उद्देश्य था। 1902 में राज्य-व्यवस्था में ब्राह्मणेतरों के लिए 50% आरक्षित-पद अमल में लाए गए। बहुजन-समाज को शैक्षणिक-द्वार रहें— इस उद्देश्य से कोल्हापुर में जाति-आधारित-बोर्डिंगों की कल्पना पली और बढ़ायी गयी। 1901 से 1922 के मध्य अलग-अलग जाति-धर्मों के विद्यार्थियों के लिए 21 बोर्डिंगों को बनाया गया। बहुजन समाज के शिक्षित-नेतृत्व को तैयार करने की प्रक्रिया यही पर पनपी। किसी विशिष्ट समाज का शैक्षणिक-वर्चस्व हटाने के लिए, पददलित-समाज बगैर विद्या के जागृत नहीं होगा —यह छत्रपति शाहू जी को 'वेदोक्त प्रकरणोपरांत' ज्ञात हो गया था। इसलिए श्री भास्करराव जाधव (मराठा), श्री आण्णासाहब लट्ठे (जैन) और श्री महावदेव कृष्णा डोंगरे (सी.के.पी.) इन तीनों आंग्लशिक्षित-कार्यकताओं को तैयार किया गया। 1930 तक श्री आण्णासाहब लट्ठे ने इस सामाजिक और राजकीय पार्श्वभूमि पर स्त्री- विषयक चिंतन और कार्य की खोज लेना प्रस्तुत शोध-निबंध का मर्यादित उद्देश्य है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आधुनिक महाराष्ट्र को श्री आण्णासाहब लट्ठे का परिचय अत्यंत-अल्प है। 'कुरुंदवाड'-संभाग में 1878 में जन्मे लट्ठे की प्रारंभिक शिक्षा भी वहीं पर हुई। आगे उच्चशिक्षा के लिए पूना-बंबई में बस जाने पर, जाने-अनजाने में तत्कालीन सामाजिक विचार-प्रवाह का असर उन पर हुआ। अभ्यास और जिज्ञासा-वृत्ति से वैचारिक-प्रगल्भता प्राप्त करने पर जानबूझकर वे छत्रपति शाहू जी के सामाजिक आंदोलन में शामिल हुए। 1907 से 1910 तक 'राजाराम कॉलेज' में प्राध्यापक, 1911 से 1914 तक कोल्हापुर-संभाग के शिक्षणाधिकारी, 1902 से 1914 तक छत्रपति शाहू जी के बोर्डिंग-आंदोलन के पक्के पुरस्कर्ता, 1915 सत्यशोधक-परिषदों के अध्यक्ष, 1921 से 1923 तक ब्राह्मणेतर-आंदोलन के तत्त्वचिंतन-नेता, मार्गदर्शक, कार्यकर्त्ता, मध्यवर्ती कायदा कौन्सिल में ब्राह्मणेतरों के प्रतिनिधि आदि विविध-भूमिकाओं द्वारा ब्राह्मणेतर-आंदोलन और जैनसमाज-सुधार का कार्य वे बढ़ाते गये। भारत की आबादी के 10% जैन-आबादी दक्षिण महाराष्ट्र में (मुम्बई इलाके के सांगली, कोल्हापुर, बेलगाम, धारवाड) रहती थी। शैक्षणिक सामाजिक व धार्मिक दृष्टिकोण से यह समाज अत्यंत पिछड़ा था। रूढ़ि और अंधश्रद्धा के प्राबल्य से पीड़ित समाज के सामाजिक, शैक्षणिक और धार्मिक विकास के लिए 3 अप्रैल, 1899 को 'दक्षिण महाराष्ट्र जैन सभा' की स्थापना 'स्तवनिधि' (कर्नाटक राज्य में अब) में हुई। श्री आण्णासाहब लट्ठे जी प्रमुख-संस्थापक थे। इस सभा की स्थापना से ही महिलाओं की समस्याओं और आंदोलन से उनका संबंध आया। 19वीं सदी के अंतिम-दशक में पूना-मुंबई के शिक्षित युवकों पर महात्मा फुले जी के पश्चात् छत्रपति शाहू जी के विचारों का गहरा असर दिखाई पड़ता है। इनमें से एक आण्णासाहब भी थे। एक विशिष्ट-समाज की स्त्री-विषयक समस्याओं और तदनुषंगिक सारी महिला-जाति की समस्याओं के चिंतन से आण्णासाहब जी की कृति में प्रगल्भता आने लगी। 'विशाळी अमावस यात्रा' के अवसर पर अधिकतर मात्रा में इकट्ठा होनेवाली महिलाओं में नवविचारों का आरोपण सहज-संभव था। इसी भूमिका द्वारा अपने सहकारी श्री आदिराज देवेंद्र उपाध्ये जी की पत्नी सौ. गोदूबाई उपाध्ये जी को 'स्त्री-शिक्षण' विषय पर निबंध पढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया।

वे बोलीं, "पति और पत्नी इस समाजरूप व्यक्ति के दाएं-बाएं अंग हैं। जिस समाज के पुरुष ही पढ़-लिखकर आगे बढ़े और स्त्रियाँ मात्र अज्ञान से पिछड़ी रहें, उस समाज को अर्धांगवायु हुआ समझो। ऐसे समाज की उन्नति तो दूर की बात रही, दिन-ब-दिन उसका ह्रास ही होता रहेगा। इसलिए अपने जैनसमाज में स्त्री-शिक्षा के प्रयास कितने जरूरी है, यह आप अच्छी तरह जान चुके होंगे। स्त्री-शिक्षा के लिए यह समाज उचित राह से आंदोलन करने का यथाशक्ति यत्न करेगा।"

किसी भरी-पूरी सभा में 1899 में कोई महिला इतनी ठिठाई से 'स्त्री-शिक्षा' विषय पर निबंध पढ़ रही है —यह देखकर उपस्थित प्रेक्षक भौंचक्के रह गए। क्योंकि 1891 की जनगणना के कोल्हापुर के रिपोर्टनुसार 'जैनसमाज की पहली पढ़ी-लिखी औरत'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

—ऐसा उल्लेख पाया जाता है। इस भाषण के बाद चाँदी का कुमकुम-करंडक देकर उनका सत्कार किया गया। इससे प्रोत्साहित होकर उन्होंने अपने आपको स्त्री-शिक्षा के कार्य को समर्पित कर दिया। आगे चलकर इन्होंने ही हिंगणे-स्त्री-संस्था में 'मैनाबाई जैन श्राविकाश्रम' की नींव डाली। (1919)

बाद की जैन-महिला-परिषदों में जरठबाला-विवाह, बालविवाह, नजदीकी रिश्तेदारों में विवाह और दहेज आदि रूढ़ियों को विरोधी टीकात्मक-चर्चा द्वारा बंद करने की प्रथा शुरू की। इन प्रथाओं के दुष्परिणाम स्पष्ट करते हुए आण्णासाहब के सहकारी रा.ब. जाधव (1901) लिखते हैं— 'कोल्हापुर-संभाग में मराठा मूल के लोगों की बस्ती करीब 1 लाख है। उनमें 5 साल की उम्र के अंदर के सिर्फ 5 ही विवाहित हैं। किंतु 50 हजार जैन-बस्ती में 155 विवाह-संख्या हैं। कोल्हापुर और दक्षिण महाराष्ट्र संस्थानों में मूक-बधिरों की संख्या हिंदूओं से ज्यादा जैनसमाज में हैं। बस्ती कम होने के बावजूद जैनसमाज में उपजातियाँ अधिक हैं। नजदीकी रिश्तेदारों में विवाह यह एक मूक-बधिरों की संख्या बढ़ने का संभाव्य-कारण है। कोल्हापुर-संभाग में पिछले 20 सालों में जैन-महिलाओं में कतई सुधार नहीं हुआ है। पुरुषों में हुआ, पर वह भी अत्यल्प। दक्षिण महाराष्ट्र के दूसरे संभागों में मूक-बधिरों की संख्या डेढ़ गुना बढ़ी है। इस संक़ट का मुकाबला करने के लिए बुरे-रिवाज बंद करने के उपाय जैनसमाज को जल्दी से जल्दी करने चाहिए। इस खतरे से ज्ञात आण्णासाहब जी ने पहले अधिवेशन में ही बाल-विवाह का तीव्र-निषेध किया। अलगे 1903 और 1904 की वार्षिक परिषदों में इस रूढ़ि से परावृत्त-पालकों का खुलेआम अभिनंदन किया गया। इतने पर आण्णासाहब जी कहाँ रुकनेवाले थे? कोल्हापुर के सरकारी अस्पताल की पहली स्त्री-धन्वंतरी और समाजसुधारिका डॉ. कृष्णाबाई केळवकर जी को उन्होंने स्तवनिधि के 1905 के वार्षिक अधिवेशन में आमंत्रित किया। उन्होंने प्रौढ-विवाह के फायदों पर भाषण दिया और 21 वर्ष पहले पुरुष और 18 वर्ष पहले स्त्री विवाह के लिए अरोग्यदृष्ट्या कैसे अयोग्य है? —यह समझाने की पूरी कोशिश की। उत्तर-भारतीय जैनसमाज में इन सुधारणावादी-विचारों के विरोध में प्रतिक्रिया उभरी। अपने मुखपत्र 'जैनमित्र' में उन्होंने दक्षिण महाराष्ट्र जैनसभा के प्रौढ़-विवाह-आंदोलन का कड़ा विरोध किया। 'श्रीजिनविजय' के संपादक के रूप में 1905 के अंक में आण्णासाहब जी ने 'जैनमित्र' के विचारों पर जमकर हमला किया।

डॉ. केळवकर जी ने प्रकृति को हितकर-विवाह कालविचारपूर्वक कहा है। 'जैनमित्र' को शायद इस आशंका ने घेरा है कि डॉ. केळवकर जी सुधारणावादी है और इसीकारण उन्होंने दक्षिण भारत जैनसभा को इशारा किया हो। वैद्यकशास्त्र की दृष्टि से यह मत प्राचीन आर्य-वैद्य भी मानते थे तथा जैनशास्त्र का भी विरोध नहीं है। शरीरशास्त्र की दृष्टि से सोचना ज़रूरी है। सामाजिक हित-अहित की नींव पर ही पारिवारिक आचरण की इमारत खड़ी होनी चाहिए। फिर भी 'सुधारक' या 'दुर्धारक' शब्द का आडंबर न

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मचाते, हमारे मित्र-अगर किसी मत की युक्तायुक्तता के बारे में अपना अभिप्राय दे, तो उचित रहेगा।

दूसरे समाज के सुधारक स्त्री-पुरुषों के विचार अपने समाज में जड़ पकड़े —यह लट्ठे जी का प्रयास रूढ़िवादी जैन कतई पसंद नहीं करते थे। फिर भी कड़ी टीका-टिप्पणियों को सहते हुए वे अपना कार्य अखंड करते रहे। इसी वजह से 1990 के अधिवेशन में बालविवाहों की घटती हुई संख्या देखकर खुशी जाहिर करने के लिए प्रस्ताव पारित किया गया। "पूर्व-प्रस्तावों का जैनसमाज आदर करता है, इसलिए परिषद् को बहुत आनंद हुआ है।" 1909 के अधिवेशन को जानबूझकर उपस्थित मान्यवर समाजसेवक, 'सर्व्हंटस ऑफ इंडिया' के सभासद, सेवा सदन के संचालक माननीय गोपाळराव देवधर जी ने इस प्रस्ताव का जोरदार समर्थन किया। समस्त सामाजिक सुधार का मूल प्रौढ-विवाह से संबंधित है —इसका विश्लेषण समग्र और मुद्दों पर जोर देकर जानकारी दी। वे बोले, हमारे समाज में अविवाहित रहकर अपने ज्ञान और सामर्थ्य का लाभ दूसरों तक पहुँचाने की तैयारी में विपुल अविवाहित स्त्री-रत्न मौजूद है। जिन्हें शक हो, वे पूना-मुंबई जाकर वहाँ के उदाहरण देखें। इसलिए इस सवाल पर आनाकानी नहीं चलेगी; क्योंकि समाज-सुधारओं का मूल-संबंध इसी से है।

विवाह के समय पति से पैसे लेकर बेटी देने की यानि 'कन्याविक्रय' की रूढ़ि थी। बेटी के माँ-बाप से प्रतिज्ञापत्र लिखवाकर छपवाने की प्रथा भी थी। ब्राह्मणेतर-आंदोलन के मशहूर कीर्तनकार तात्यासाहब चोपडे जी ने ग्रामीण-भागों में 'कन्याविक्रय' विषय पर कीर्तन शुरू किये। जिससे जनजागृति होने लगी। कोल्हापुर के जैन-बोर्डिंग में इस समय कर्मवीर भाऊराव पाटील जी छात्र थे। वे चोपडे जी के साथ ग्रामीण-विभागों में कीर्तन के माध्यम से शिक्षा, समाजसुधार और सत्यशोधक-विचारों का प्रचार-प्रसार करते थे। 1902 से 1914 तक आण्णासाहब जी जैन-बोर्डिंग के अधीक्षक होने के नाते वही आंदोलन का केन्द्र था और छत्रपति शाहू जी को इस पर भरोसा था।

विवाह की बारात के सामने एवं 'श्रुतपंचमी' (जैनशास्त्र का पूजन कर जुलूस निकालने का दिन) के दिन नाचनेवालियों का नाच रखना प्रतिष्ठा का कार्य माना जाता था। आण्णासाहब जी ने इस प्रथा का कड़ा विरोध किया। खरीदकर महिलाओं को नचाना और सामुदायिक रीति से वीभत्स बोलना, यह स्त्री-जाति का अवमान है —यह खुलेआम कहने का धैर्य दिखाने से तत्कालीन सनातनी लोगों की रोष का बे'कारण बने।

लड़कों के साथ लड़कियों को भी शिक्षा प्राप्त हो, इस विचार से 1908 को कोल्हापुर में जैन-श्राविकाश्रम की (लड़कियों का वसतीगृह) शुरूआत की। इस वर्ग का निरीक्षण करने आये बेलगाम के आण्णा फडयाप्पा चौगुले लिखते हैं—

प्रौढ-महिलाओं के वर्ग में गया, तो वहाँ कोई भी न था। यहाँ पर महिलाएं ही नहीं हैं, तो परीक्षण क्या करेंगे? तब जाकर अधीक्षिका द्वारा जानकारी मिली कि, शर्म के मारे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सारी महिलाएँ गरीब गायों की तरह स्वच्छतागृह के पीछे छिपकर बैठी हैं।

महिलाएँ शिक्षा प्राप्त करें, आश्रम में आयें —इसलिए अपनी पत्नी ज्ञानमती को आण्णासाहब जी ने अपने घर पर खुद पढ़ाया। गर्मी-सर्दी में पल्ले के नीचे स्लेट ढककर 1-1½ मील तक चलकर तब पाठशाला आया करती थी। स्त्री-शिक्षा के लिए दक्षिण भारत जैन सभांतर्गत स्वतंत्र-शिक्षा-विभाग स्थापित कर व्यवस्था स्वयं स्वीकार की। प्रोत्साहन के तौर पर महिलाओं के लिए छात्रवृत्तियाँ घोषित की। महिलाओं के हस्तकला का प्रदर्शन आयोजित किया। प्रदर्शन देखकर गवर्नर साहब की पत्नी मिसेस मॅनेंझीनुर बोली, "ज्ञानमती जी लट्ठे ने इस प्रदर्शन का आयोजन कर हमें आश्चर्यचकित किया है। मैं उनकी सराहना करती हूँ।"

1911 से 1914 ई. तक आण्णासाहब जी कोल्हापुर संस्थान के शिक्षा-मंत्री पद पर बने रहे। स्त्री-शिक्षा के कार्य में उन्हें रखमाबाई केळवकर जी (डॉ. कृष्णाबाई केळवकर जी की माताजी) सहायता करती। 1911 ई. में कोल्हापुर संस्थान में 1788 लड़कियाँ शिक्षा प्राप्त कर रही थी, 1914 ई. में यह संख्या 2271 तक पहुँची। लड़कियों को लाने-ले जाने के लिए एक चर्मकार-महिला नियुक्त की गयी। दलित-महिलाओं को नौकरी देने का अभिनव-प्रयोग छत्रपति शाहू जी के नेतृत्व में शिक्षा-क्षेत्र में कोल्हापुर में ही हुआ। आण्णासाहब जी के इस कार्य की प्रशंसा करते हुए कर्नल वूडहाऊस जी एक सार्वजनिक समारोह में बोले। इसके प्रत्युत्तर में आण्णासाहब जी ने कहा "इतनी कोशिशों के बावजूद भी स्त्री-शिक्षा का प्रसार जितने जोरों से होना चाहिए, नहीं हो रहा है। इसकी कारणं-मीमांसा करते हुए वे बोले कि इस समाज में बालविवाह की रूढ़ि ही स्त्री-शिक्षा में अड़चनें पैदा कर रही है। ऐसे में अध्यापिकाओं की हैसियत भी संतोषजनक नहीं है। हाल ही में छ: महिला अध्यापिकाओं को प्रशिक्षण के लिए महाविद्यालय में भेजा गया है। एक मैट्रिक अध्यापिका के लिए महाविद्यालय में भेजा गया है। एक मैट्रिक अध्यापिका को छात्रवृत्ति भी प्रदान की गयी है।"

तत्कालीन स्त्री-शिक्षा की समस्याएँ आर्थिक और सामाजिक प्रश्नों के जाल में उलझकर भी अपनी मर्यादित कार्यकक्षा में रहकर आण्णासाहब जी की कोशिशें उल्लेखनीय हैं। इस कार्य से उन्हें स्वजाति से और अपनों से भी बहुत संकटों का सामना करना पड़ा। जैनों की उपजातियों में भी विवाह करवाने का उन्होंने प्रयत्न किया। (चतुर्थ-पंचम) इसप्रकार का विवाह उन्होंने अपने घर में ही पुलिस-सुरक्षा में जैन-बोर्डिंग में सम्पन्न किया। अपनी भतीजी श्रीमती की विवाह श्री वझोंबा चतुर्थपंथीय बोर्डिंगवासी युवक से कराकर छात्रों के सामने आदर्श-निर्माण करने का प्रयत्न किया।

स्वाभाविकतया सनातनी-जैनों ने उनका बहिष्कार किया। 1913 में जब उनकी पहली पत्नी का स्वर्गवास हुआ, तो अंतयात्रा में श्री बळवंतराव धावते जी, उनके मित्र और एकमेव जैन व्यक्ति उपस्थित थे। आण्णासाहब जी की साली श्रीमती कलंत्रे, जो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बालविधवा थीं, उससे विवाह न कर, प्रथम-पत्नी के मृत्युपश्चात् उन्होंने कु. ज्योत्स्ना कद्रे से दूसरी शादी की। विरोधियों ने उन पर व्यंग्य किये।

फिर भी आण्णासाहब जी चुप ही रहे। मेरे अनुसंधान-काल में मैंने जब श्रीमती कलंत्रे जी से भेंट की, तो इस प्रश्न के संबंध में पूछताछ की कि "आण्णासाहब जी ने तब आप से विवाह क्यों नहीं किया?" इसका उत्तर देते हुए वे बोली, "उन्होंने मुझे पूछा मेरी बहन की बीमारी में मैं वहीं रहती थी। परन्तु विवाह से मुझे इनकार था। मुझे स्त्री-शिक्षा का कार्य करना था। मेरी इच्छा ज्ञात होने पर हमेशा उन्होंने मेरी सहायता और मार्गदर्शन किया। उनकी बदौलत ही आज मैं इतना बड़ा काम कर सकी।"

इसी श्रीमती कळंत्रे ने पूना के 'मैनाबाई श्राविकाश्रम' में रहकर अपनी शिक्षा पूरी की। 1922 में सांगली में 'जैन श्राविकाश्रम' की शुरूआत की। 1949 से 1952 तक सांगली मतदार-संघ से विधायक के रूप में चुनी गयी।

आण्णासाहब जी की द्वितीय पत्नी ज्योत्स्नाबाई ने भी उनकी स्त्री-शिक्षा के कार्य में मदद की। 1914 के बाद उनके जीवन में एक भयंकर तूफान उठा। उनके सुधारवादी विचारों के कारण छत्रपति शाहू जी के दरबार में उनकी महत्ता बढ़ती गयी, जो गायकवाड-गुट के लिए सिरदर्द बन गयी। कल्लाप्पा निटवे जी जैसे सनातनी जैनों से हाथ मिलाकर उन्होंने कुछ ऐसी खिचड़ी पकायी कि कोल्हापुर में घटे फरवरी 1914 के 'डामर प्रकरण' में लट्ठे जी को फँसाया गया और छत्रपति शाहू जी को उनके विरुद्ध कर दिया। आण्णासाहब जी ने कोल्हापुर छोड़ा और बेलगाम में जाकर वकालत का व्यवसाय शुरू किया। छत्रपति शाहू जी के मरणोपरांत (1922) छत्रपति राजाराम महाराजा की विनती पर फिर से कोल्हापुर लौटे और 1925 से 31 तक संस्थान के दीवान (मंत्री) पद पर कार्यरत रहे। इसी काल में उनका स्त्री-विषयक कार्य गतिमान रहा। कोल्हापुर के 'चेम्सफोर्ड बाल-संगोपन केंद्र' का प्रदर्शन-उद्घाटक के रूप में आण्णासाहब जी की पत्नी ज्योत्सनाबाई ने अत्यंत मार्मिक भाषण हुआ।

"भयंकर अज्ञान और विपुल जनसंख्या के कारण देश में बालसंरक्षण जैसा होना चाहिए, नहीं हो रहा है। अज्ञानी और अशिक्षित माताओं को स्वच्छता का श्रीगणेश भी मालूम नहीं। दरिद्रता और अज्ञान को भयंकर-रूढ़ियों का भी साथ मिला है। बालविवाह से दुर्बल-बच्चे पैदा हो रहे हैं। मर्द मावलों की ताकत पर छत्रपति शिवाजी महाराजा ने स्वतंत्रता प्राप्त की। गली-गली अखाड़े निकालकर छत्रपति शाहू जी ने कोल्हापुरवासियों की तबीयत तंदुरुस्त रखी। बालसंरक्षण एक शास्त्र है। ऐसे शास्त्र की जानकारी देने के लिए देहात-देहात में शाखाएँ निकालना जरूरी है। अपने-अपने गाँवों में अच्छी दाई-माँ तैयार करें। संभव हो तो गौशालाएँ रखें, जिससे बच्चों को शुद्ध दूध प्राप्त हो। जिस भूमि में भीम जैसा बलवान्, अर्जुन जैसा रण-धुरंधर और शिवाजी जैसा राष्ट्रवीर पैदा हुआ हो, उसी भूमि में और भी राष्ट्रवीर पैदा हों, जो हिंदुस्तान को उसकी खोई हुई प्रतिष्ठा वापस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिला सकें। ईश्वर के पास इसी प्रार्थना के साथ प्रदर्शन का उद्घाटन होने की मैं घोषणा करती हूँ।

तत्कालीन राष्ट्रीय आंदोलन का ध्यान रखते हुए कुछ बातें अत्यंत महत्त्वपूर्ण जान पड़ती है। स्वतंत्र भारत के बालक सबल हो यह आशावादी दृष्टिकोण है। तो राष्ट्रवादी बनकर भारत को खोई हुई प्रतिष्ठा प्राप्त कराए यह दूरदर्शिता भी है। ब्राह्मणेतर-आंदोलन में तत्कालीन नेताओं की पत्नियाँ सार्वजनिक जीवन में बहुत कम दिखाई देती हैं। श्री भास्करराव जाधव जी की भतीजी हीराबाई जी भापकर (बापूसाहब भापकर जी की पत्नी) 1940 के पश्चात् पूना के राजकीय और सामाजिक क्षेत्र में कार्यरत थी।

स्त्री-विषयक आंदोलन की समस्याओं का अनुभव होने के कारण कोल्हापुर के दीवानपद पर आते ही 11 जून, 1926 को बालविवाह-प्रतिबंधक-प्रस्ताव पारित किया। कोल्हापुर-संस्थान में लड़का 14 साल की उम्र का और लड़की 10 साल की होने से पहले विवाह करनेवालों को 2000 रु. जुर्माना और सजा मुकर्रर की गयी। इस कायदे में विवाह की उम्र इतनी कम क्यों की गई? इसकी आज भी आशंका है, क्योंकि उन्होंने इससे पहले लड़का 21 का और लड़की 18 की पूर्ण हो इस बात का आग्रह किया था। शायद तत्कालीन लोगों के दबाव में कायदा करना पड़ा हो —ऐसा बहुत संभव हो।

1940 के अखिल भारतीय अधिवेशन के साथ 'ब्राह्मणेतर-परिषद् अधिवेशन बेलगाम' में माणिकबाग में आयोजित किया गया। कोल्हापुर के डॉ. मालतीबाई मुले जी की अध्यक्षता में 'जैन महिला परिषद्' का अधिवेशन आयोजित किया गया। श्रीमती नायडू जी इस महिला-अधिवेशन को भेंट दे गयी। कुछ प्रस्ताव आज भी मननीय हैं....:

जब तक महिलाओं को स्वतंत्रता नहीं मिलेगी, देश को भी नहीं मिलेगी और अगर ली भी गयी, तो टिकेगी नहीं। महिलाओं के लिए पाठशाला और महाविद्यालय शुरू करें। मतदान का अधिकार दें। काम के घंटे और पगार में स्त्री-पुरुषों को गुलामी में रखते हैं ब्रिटिशों की गुलामी से मुक्ति चाहते हैं। यह प्रकृति का नियम है कि जो दूसरों को गुलाम बनाता है, वह किसी न किसी का गुलाम ज़रूर बनता है। स्त्रीवादी-दृष्टिकोण से कांग्रेस की स्वतंत्रता की माँग का यह सीधा-सीधा विरोध था।

'अखिल भारतीय महिला परिषद्' की स्थापना 1926 में हुई। इसी पृष्ठभूमि पर आण्णासाहेब जी ने 'जैन महिला परिषद्' के 29वे अधिवेशन में इस परिषद् की घटना तैयार की। एक रुपया सभासद-फीस और सत्रह रुपये आजीवन-सभासद-फीस तय की गई। जैनधर्म और स्त्री-शिक्षा की प्रचार-प्रसार का उद्देश्य सफल करने के उद्देश्य से अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और दो सचिव के पद निर्माण किये गये। इसी घटना में कुछ परिवर्तन होकर आज भी यह परिषद् इसी नाम से कार्यरत है। मात्र रमबाई रानडे जी का 15.2.1929 का पत्र यानि आण्णासाहब जी के काम की रसीद थी। चिट्ठी में जस्टिस रानडे जी का वाडा, पूना ऐसा पता था। वे लिखतीं हैं..... रा.रा. आण्णा बाबाजी लट्ठे,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

न.वि.वि. इधर से सेवासदन की अन्नपूर्णाबाई आपटे जी को परिषद् के लिए भेजा था। उन्होंने यथामति अपने भाई-बहिनों की जो कुछ सेवा की और आप लोगों ने उन्हें जिस अत्यधिक सम्मान से मान्यता दी— इसका आद्योपांत-वृत्तांत रा.रा. श्री देवधर और श्री काकू से सुनकर बड़ा संतोष हुआ। अपने देश में अलग-अलग कामों के लिए कितनी भी धार्मिक, औद्योगिक या शिक्षा-संस्थाएँ स्थापित हों, सबका अंतिम-लक्ष्य एक होने से आपस में बहन-भाई का रिश्ता रखते हैं। आपसी सहयोग उनका फर्ज बनता है। आपका कोल्हापुर स्थित 'श्राविकाश्रम' और 'महिला सभा' के बारे में सुविधानुसार से लिखें।

धार्मिक रूढ़ियों में गले तक फँसी जैन-महिलाओं को इकट्ठा कर आधुनिक विचारों का उनमें बहाव लाना तथा इस वास्ते स्वतंत्र विद्याविभाग स्थापित करना। कोल्हापुर संस्थान की महिलाओं के लिए छात्रवृत्ति शुरू कर शिक्षा को बढ़ावा देना। इन सब बातों से उनके कार्य का समूह-दृष्टि में आता है। दूसरे समाज के स्त्री-पुरुषों को बुलाकर अपने समाज को मार्गदर्शन करवाना, जिससे अपना समाज कहाँ है? इसका मूल्यांकन करना आदि काम लट्ठे जी ने किये हैं। तत्कालीन समाज के सनातनी व हितशत्रुओं का विरोध उन्हें निश्चितरूप से सहना पड़ा। कभी-कभार सुधारों का ज्यादातर आग्रह न करते हुए किंतु शनैः शनैः निश्चित बदलाव का उनका दृष्टिकोण भी जान पड़ता है। कोई भी सुधार जिनके लिए करना है, उनमें ही एक पग पक्का जमाकर लोगों को प्रगतिशील विचारों के साथ आगे ले जाना चाहिए —यह लट्ठे जी की विचारधारा थी। 'चॅरिटी बिगेन्स फ्रॉम होम' को मद्देनजर रखते हुए पत्नी और साली को शिक्षित कर समाजकार्य के लिए प्रवृत्त किया। महात्मा फुले जी और छत्रपति शाहू जी का सामाजिक और वैचारिक परंपराएं अपने कार्य से आगे बढ़ाने का काम आण्णासाहब जी ने किया।

सन्दर्भ-सूची

1. सत्यशोधक समाज का वार्षिक अहवाल 1916, पालेकर संग्रह पूना, 'दीनमित्र' 26, जून 1929
2. डॉ. कडियाळ रा.अ. । कै. नाम. भास्करराव जी जाधव का जीवन और कार्य, इंदुमती प्रकाशन कोल्हापुर, 1990, पृष्ठ 107-108।
3. डॉ. पाटील पद्मजा, आण्णासाहब जी लट्ठे और उनका काल, अप्रकाशित पीएच.डी. प्रबंध, शिवाजी विद्यापीठ, 1986, पृष्ठ 326।
4. किर धनंजय छत्रपति शाहू : ए रॉयल रिव्ह्यूल्युशनरी, पॉप्युलर प्रकाशन, मुम्बई, 1976, पृष्ठ 202-203, आण्णासाहब जी लट्ठे — मेमॉयर्स ऑफ हिज आयनेस छत्रपति शाहू महाराजा ऑफ कोल्हापुर, 1924, मुंबई खंड 1, पृष्ठ 316।
5. डॉ. संगवे, छत्रपति शाहू का पत्रव्यवहार, खंड 4, (1900-1905) हुकुम क्र. 75 शिवाजी विद्यापीठ प्रकाशन, 1988 पृष्ठ 91।
6. डॉ. खणे, श्री शाहू-सामाजिक और राजकीय आंदोलन का अभ्यास, शिवाजी विद्यापीठ,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अप्रकाशित पीएच.डी. प्रबंध, 1978, पृष्ठ 185-202।
7. डॉ. पाटील पद्मजा, उपरोक्त, पृष्ठ 8 से 39।
8. डॉ. संगवे विलास, दक्षिण भारत जैन सभा इतिहास सांगली 1975, पृष्ठ 29-30।
9. गोदुबाई उपाध्ये, जैन भगिनीभाषण, जैन-बोझक सोलापुर, वर्ष 14, अंक 5 सेट, मार्च से जून 1988, पान नं. 15 से 17।
10. खोत ऋतुजा, 20वी सदी के अर्धशतक में कोल्हापुर जिले के जैनसमाज के स्त्रियों की शिक्षा एम्. फिल्. पदवी के लिए शिवाजी विद्यापीठ को प्रस्तुत निबंध, अप्रकाशित 1989, पृष्ठ 42।
11. रा.बे. जाधव, जनगणना अहवाल कोल्हापुर संस्थान 1901, कोल्हापुर पुराभिलेखागार।
12. डॉ. संगवे विलास, द.भा.जै.स., इतिहास (1899 से 1975) सांगली, 1976।
13. श्री. जिनविजय, द.भा.जै.स. मुखपत्र जून, 1905, पृष्ठ 113-114।
14. डॉ. संगवे, द.भा.जै.स. इतिहास, पृष्ठ 117।
15. डॉ. पद्मजा पाटील, आण्णासाहब लट्ठे जी का ब्राह्मणेतर आंदोलन कार्य (1911-1923) 'संशोधक' में प्रकाशित लेख अंक मार्च-जून 1922, पृष्ठ 60।
16. य.दि. फडके, आण्णासाहब लट्ठे कॉंटिनेंटल प्रकाशन, पूना, पृष्ठ 7 से 14।
17. श्री. मद्वण्णा यशवंत दादा, स्व. आण्णासाहब जी लट्ठे जीवन और कार्य, सांगली, 1979, पृष्ठ 22, प्रगति और जिनविजय अप्रैल 1913।
18. लट्ठे आण्णासाहब जी, मेमॉयर्स ऑफ छत्रपति शाही-खंडर उपरोक्त, पृष्ठ 358-359।
19. प्रगति और जिनविजय 1 जनवरी 1935।
20. प्रगति और जिनविजय 6 अप्रैल, 1913, पृष्ठ 5।
21. श्रीमती कलंत्रे जी की डॉ. पद्मजा पाटील द्वारा मुलाकात, मुंबई दिनांक 14 नवम्बर 88।
22. काळे पांडुरंग जी. कर्मयोगिनी श्रीमंतीबाई कलंत्रे मुंबई, 1976, पृष्ठ 12-13।
23. सौ. ज्योत्स्नाबाई लट्ठे जी का भाषण, ज्ञानसागर, 1-2, 1926, श्री. मद्पाण्णा, उपरोक्त, पृष्ठ 93-94।
24. कोल्हापुर स्टेट गॅझेट, जून 1926 पृष्ठ 58।
25. प्रगति और जिनविजय 11 जनवरी, 1925, पृष्ठ 4।
26. श्री बावसकर बी.एस. आदि (प्रकाशित) सामाजिक रचना और परिवर्तन भारतीय समाज की स्त्री, खंड 2, रोज प्रकाशन, 1996. पृष्ठ 119।
27. द.म. जैन सभा मैनेजिंग कौन्सिल प्रोसिडींग बुक 1926-40 अंतर्गत 1927 की महिला परिषद् का रिपोर्ट।
28. आण्णासाहब लट्ठे जी को नाम रमाबाई रानडे जी के खत दिनांक 15.2.1929, आण्णासाहब लट्ठे का वैयक्तिक पत्रव्यवहार।

❖❖

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूजनीय हैं संत हमारे !

—*अनूपचन्द न्यायतीर्थ*

संतों से करबद्ध प्रार्थना, नित-प्रति यही हमारी है।
दूर करो अज्ञान-अंधेरा, आवश्यकता ये भारी है।।

जो संसार-अंत को चाहें, सच्चे-संत निराले वे।
इन्द्रिय-दमन, शमन इच्छाएँ, मन-वश करनेवाले वे।।

क्रोध-मान-माया को तजकर, लोभ-मोह को छोड़ा है।
राग-द्वेष लेश नहिं जिन के, दुनिया से मुँह मोड़ा है।।

हित-मित-भाषी, श्रुत-अभ्यासी, दया हृदय में धारी है।
वत्सलता की मूर्ति मनोहर, प्राणी-प्रति हितकारी है।।

भौतिकता की चकाचौंध से, सदा दूर जो रहते हैं।
अपने पद की मर्यादा-हित, कष्ट अनेकों सहते हैं।।

रूढि-अंधविश्वास बुरा कह, जो सन्मार्ग दिखाते हैं।
सत्य-अहिंसामय जीवन का, सच्चा-पाठ पढ़ाते हैं।।

आत्म-प्रशंसा परनिन्दा अरु, यश-अपयश की चाह नहीं है।
अच्छा-बुरा कहे कोई नहीं, उसकी कुछ परवाह नहीं है।।

वंदनीय अभिनन्दनीय हैं, स्वयं तिरे औरों को तारे।
ऐसे संत निरामय निस्पृह, पूजनीय हैं सदा हमारे।। ❖❖

कृपया ध्यान दें

भगवान् महावीर की जन्मभूमि कुण्डग्राम (बासोकुण्ड) के दर्शन मैंने किए हैं और वही भगवान् महावीर की जन्मभूमि है। विद्वान्, त्यागी एवं समाज को इस विवाद में पड़कर विग्रह पैदा नहीं करना चाहिये और सभी को क्षेत्र के विकास में सहयोग देना चाहिये। —आचार्य भरत सागर, *सोनागिर सिद्धक्षेत्र (म.प्र.)* ◆◆

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रथम प्रधानमंत्री पं. नेहरू जी के समय का

प्रधानमंत्री सचिवालय का एक महत्त्वपूर्ण पत्र

जैनसमाज का एक डेपूटेशन सर सेठ भागचंद जी सा. के नेतृत्व में भारत के प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल ज़ी से 25 जनवरी 1950 को 11 बजे मिला था। उसके उत्तर में जो उनके सेक्रेटरी ने जो पत्र भेजा था, वह समाज की जानकरी के लिये यहाँ दे रहे हैं। —सम्पादक

No. 33/94/50 PMS.

PRIME MINISTERS, SECRETARIAT

New Delhi: 31st January, 1950

Dear Sir,

With reference to the deputationof certain representatives of the Jains, who met the Prime Minister on the 25th January, I am desired to say that there is no cause whatever for the Jains to have any apprehensions regarding the future of their religion and community. Your deputation drew attention to article 25, explanation II of the constitution. This explanation only lay down a rule of construction for the limited purposes of the provision in the Article and as you will notice, it mentions not only Jain's but also Budhists and the Sikhs. It is clear that Budhists are not Hindus. It is, therefore, there is no reason for thinking that Jains are considered as Hindus. It is true that Jains are some ways closely aliked to Hindus and have many customs in common, but there can be no dbout that they are a distinct religious community and contitution does not in any way effect this will recognised position.

Yours faithfully,
Sd. A.V. PAL,
Principal Private Secretary to the PM

Shri S.G. Patil,
Representatie of Jains Deputation
10, Court, New Delhi.

उक्त पत्र का हिन्दी-अनुवाद

प्रिय महोदय,

अपने धर्म और समुदाय के भविष्य के संदर्भ में कतिपय जैन-प्रतिनिधियों का एक प्रतिनिधिमण्डल प्रधानमंत्री जी से गत 25 जनवरी, 1950 को मिला था। मुझे प्रधानमंत्री जी की ओर से कहने की अनुमति हुई है कि जैनधर्मावलंबियों को अपने धर्म अथवा समुदाय के लिए परेशान होने की आवश्यकता नहीं है। आपके प्रतिनिधिमण्डल ने संविधान के खण्ड दो अनुच्छेद 25 की ओर ध्यान आकर्षित करने का निवेदन किया है। अनुच्छेद का उपयोग सीमित उद्देश्य के लिए, उसके स्पष्टीकरण से संबंधित है। जैसा कि आपको ज्ञात है यह जैनधर्म के लिए ही नहीं वरन् बौद्ध और सिख धर्म के लिए भी है। यह स्पष्ट है कि बौद्ध हिन्दू नहीं हैं। अतएव यह सोचना व्यर्थ है कि जैनसमुदाय के लोगों को हिन्दू माना जाये। यह सत्य है कि हिन्दुओं का बहुत-कुछ जैन-लोगों में भी प्रतिबिम्बित है। जैन-समुदाय और हिन्दू-धर्म के अनेक रीति-रिवाज मिले-जुले हैं; लेकिन इसमें भी कोई सन्देह नहीं है कि जैन-समुदाय के लोग पृथक् धार्मिक समुदाय से संबद्ध हैं अतएव संविधान इस सुव्यवस्थित मान्यता प्राप्त स्थिति को कतई प्रभावित नहीं करता।

आपका विश्वासपात्र
अ. ए.वी. पै
प्रधानमंत्री के प्रधान निजी सचिव

सेवा में,
श्री एस.जी. पाटिल
जैन प्रतिनिधिमण्डल के प्रतिनिधि
10 कोर्ट, नई दिल्ली

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुस्तक-समीक्षा

(1)

पुस्तक का नाम : महावीर की जन्मभूमि 'कुण्डपुर'
लेखक : राजमल जैन
प्रकाशक : भगवान् महावीर स्मारक समिति, राजेन्द्र नगर, पटना-16
संस्करण : प्रथम, 2003 ई., डिमाई साईज़, पेपरबैक, पृष्ठ 66

भगवान् महावीर की जन्मभूमि के विषय में वर्तमान में जो अप्रासंगिक विसंवाद उत्पन्न किया गया है, उसके बारे में यह कृति अत्यंत प्रामाणिकरूप से समस्त आशंकाओं का निवारण करते हुए मार्गदर्शन करती है। इसमें विद्वान् लेखक ने आजकल के समस्त आक्षेपों का विनम्र एवं शास्त्र-सम्मत समाधान देते हुए दृढ़तापूर्वक प्रमाणित किया है कि भगवान् महावीर की जन्मभूमि गंगा के उत्तरवर्ती विदेह राज्य की तत्कालीन राजधानी वैशाली के निकटवर्ती 'कुण्डपुर' है, जिसे आजकल 'बासोकुण्ड' के नाम से भी जांनते हैं।

इतने सारे प्रमाणों एवं तथ्यों की निर्विवाद प्रस्तुति के बाद भी यदि कोई किसी तरह का भ्रम शेष रखता है, तो उसके दो ही कारण हो सकते हैं— 1. या तो वह पूरी तरह से पूर्वाग्रह से युक्त है, और सत्य को स्वीकार ही नहीं करना चाहता, 2. अथवा उसे इतना विवेक ही नहीं है कि उगे हुए सूर्य की भाँति जाज्वल्यमान प्रमाणों के पुंज को देखकर भी वह सत्य का निर्णय नहीं कर पा रहा है।

किसी भी पूर्वाग्रह या किसी के प्रति आक्षेप की भाषा अथवा मर्यादाविहीन-शब्दावली का कदापि प्रयोग किए बिना मात्र सत्य और तथ्य की निष्पक्ष प्रस्तुति की उदात्त-भावना से लिखी गई यह कृति 'गागर में सागर' की भाँति अत्यंत महनीय है। तथा प्रमाणों को भी इसमें बिना तोड़े-मरोड़े प्रामाणिक-रीति से ही प्रस्तुत किया गया है। ऐसी अनुपम विशेषताओं से संवलित इस महत्त्वपूर्ण प्रकाशन के लिए विद्वान् लेखक एवं प्रकाशक बारंबार अभिनन्दनीय है। यह कृति प्रत्येक जैन-मन्दिर में, पुस्तकालय में एवं जैनसंघ के प्रत्येक सदस्य एवं श्रावक-श्राविका के साथ-साथ जैनेतर जिज्ञासुओं के निजी संग्रह में अवश्य संग्रहणीय है। तथा निष्पक्षभाव से इसे पढ़ने पर महावीर की जन्मभूमि-विषयक विवाद दूर हो सकता है।

—सम्पादक **

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0:In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(2)

पुस्तक का नाम : ऋषभदेव (महाकाव्य)
लेखक : कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह
प्रकाशक : भारत बुक सेंटर, 17, अशोक मार्ग, लखनऊ-226001
संस्करण : प्रथम, 1997 ई.
मूल्य : 150/- (डिमाई साईज़, पक्की बाइंडिंग ज़िल्द, लगभग 140 पृष्ठ)

आदिब्रह्मा तीर्थंकर ऋषभदेव के सम्पूर्ण जीवन-दर्शन को आधुनिक हिन्दी काव्य-शैली में संजोकर इस काव्य में प्रस्तुत किया गया है। नौ सर्गों में विभाजित इस महाकाव्य में विद्वान् लेखक ने अपनी काव्य-प्रतिभा का सक्षम-निदर्शन प्रस्तुत किया है। इसकी विद्वत्तापूर्ण प्रस्तावना में कवि ने भारतीय वाङ्मय के अनुसंधानपूर्वक यह प्रमाणित किया है कि पहले इस देश का नाम जैन-परम्परा के प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव के पिता नाभिराय के नाम पर 'अजनाभवर्ष' था। और फिर उन्हीं के पुत्र चक्रवर्ती भरत के नाम पर ही इस देश का नाम 'भारतवर्ष' हुआ। उन्होंने अपने प्रत्येक सर्ग में निबद्ध विषय-विवरण को विभिन्न भारतीय प्रमाणों के साथ संक्षेप में अपनी प्रस्तावना में संजोया है। यद्यपि पूर्णत: जैनपुराणों पर ही आश्रित न होते हुए भी यह कृति जैन-परम्पराओं के अनुसार ही तीर्थंकर ऋषभदेव के जीवन-दर्शन को प्रस्तुत करती है।

इसकी सरलतम भाषा-शैली एवं हृदयग्राही काव्य-प्रतिभा प्रत्येक पाठक को अपनी ओर आकृष्ट करने में पूर्णत: समर्थ है। इसीलिए जैनसमाज के लोगों को यह कृति अवश्य संग्रहणीय एवं पठनीय है। **—सम्पादक ****

(3)

पुस्तक का नाम : युगंधर भगवान् महावीर (मराठी)
संपादक : श्री महावीर कंडारकर
प्रकाशक : श्री मिलिंद फडे, ९५. मार्केट यार्ड, गुलटेकडी, पुणे (महाराष्ट्र)
संस्करण : प्रथम, (डिमाई साईज़, पेपरबैक, लगभग 150 पृष्ठ)

भगवान् महावीर के जीवन-दर्शन के विभिन्न पक्षों पर राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद जी, डॉ. ए.एन. उपाध्ये, डॉ. विलास संगवे, डॉ. निर्मल कुमार फडकुले आदि अनेकों प्रतिष्ठित विद्वानों के आलेखों के मराठी-प्रारूपों के द्वारा इस कृति का कलेवर निर्मित होने से मराठी जैन-साहित्य के लिए यह रचना अत्यंत महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी है। यद्यपि सम्पादन की दृष्टि से इसमें पर्याप्त गुंजाइश है, फिर भी सामग्री की महत्ता इस कमी को भुला देती है। भगवान् महावीर के 2600वें जन्मकल्याणक-वर्ष के संदर्भ में प्रकाशित इस महनीय एवं प्रासंगिक प्रकाशन के लिए धर्मानुरागी श्री मिलिंद फडे एवं उनका संस्थान वर्धापन के पात्र हैं। **—सम्पादक ****

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(4)

पुस्तक का नाम : परीक्षा सासूची (मराठी नाटिका)
लेखिका : श्रीमती ज्योति जितेंद्र शहा
प्रकाशक : सुमेरु प्रकाशन, डी-6, राजहंस सोसायटी, तिलक नगर, डोंबिवली (पूर्व) महाराष्ट्र
संस्करण : प्रथम, 2002 ई.
मूल्य : 40/- (डिमाई साईज़, पेपरबैक, लगभग 80 पृष्ठ)

विगत कुछ वर्षों से मराठी का जैन-साहित्य सम्पूर्ण मराठी-साहित्य में अपनी सक्षम उपस्थिति को दर्ज करा रहा है। इसी क्रम में यह एक नाटिका का संग्रह प्रकाशित हुआ है, जो कि प्रयोगधर्मी धार्मिक एवं सामाजिक नाटिकाओं से सुसज्जित है। यह एक प्रसन्नता की बात है कि मराठी साहित्य के इस संवर्द्धन में सुमेरु प्रकाशन की भूमिका प्रमुख रही है। इस संस्थान से पिछले कुछ वर्षों में ऐसे अनेकों महत्त्वपूर्ण साहित्यिक संस्करणों का प्रकाशन हुआ है, जिन्हें वर्तमान मराठी साहित्य में भरपूर सम्मान मिला है।

ऐसे सामयिक एवं उपयोगी प्रकाशन के लिए विदुषी लेखिका एवं सुमेरु प्रकाशन हार्दिक बधाई एवं अभिनंदन के पात्र हैं। **—सम्पादक** ✱✱

(5)

पुस्तक का नाम : जैन लॉ (हिन्दी अनुवाद)
संकलन-संपादन : स्वर्गीय बैरिस्टर चम्पतराय जी जैन
प्रकाशक : श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन (धर्मसंरक्षिणी) महासभा
संस्करण : तृतीय, 2002 ई.
मूल्य : 40/- (डिमाई साईज़, पेपरबैक, लगभग 135 पृष्ठ)

हिन्दू लॉ और मुस्लिम पर्सनल लॉ के समान ही जैनसमाज का ही अपना सामाजिक विधान है, और वह भी प्राचीन आचार्यों के साहित्य पर आधारित है, इसे बहुत कम लोग जानते हैं। बहुत वर्ष पहले धर्मानुरागी स्वर्गीय बैरिस्टर चम्पतराय जी ने Jain Law के नाम से अंग्रेजी में एक पुस्तक लिखी थी, उसका हिन्दी अनुवाद पहले 1926 ई. में प्रकाशित किया गया था। फिर इसका द्वितीय संस्करण 1984 में एवं तृतीय संस्करण अब प्रकाशित किया गया है।

ऐसे कार्यों के प्रेरणास्रोत पूज्य आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज विगत पचास से अधिक वर्षों से इस कृति की महत्ता को प्रतिपादित कर रहे हैं, और उन्हीं की पावन-प्रेरणा से वर्तमान संस्करण का प्रकाशन हुआ है। यद्यपि यह संस्करण विगत संस्करणों का पुनर्मुद्रण मात्र है, इसीलिए इसमें पिछले संस्करणों की जो सम्पादकीय कमियां थी, वे भी यथावत रही हैं, फिर भी युग की मांग के अनुरूप समय पर इसके प्रकाशित होने से इसकी उपयोगिता को कम नहीं आंका जा सकता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वैसे इस कृति का कुन्दकुन्द भारती के तत्त्वावधान में वैज्ञानिक सम्पादन एवं अनुवादपूर्वक गरिमापूर्ण प्रकाशन शीघ्र ही होने जा रहा है। —सम्पादक **

(6)

पुस्तक का नाम : हिन्दी गद्य के विकास में जैन-मनीषी पं. सदासुखदास का योगदान
लेखिका : डॉ. (श्रीमती) मुन्नी जैन
प्रकाशक : पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी एवं
श्री दिगम्बर जैन सिद्धकूट चैत्यालय टेम्पल ट्रस्ट, अजमेर (राज.)
संस्करण : प्रथम, 2002 ई.
मूल्य : 300/- (डिमाई साईज़, पक्की ज़िल्द, लगभग 345 पृष्ठ)

डॉ. फूलचन्द्र जैन प्रेमी की सहधर्मिणी डॉ. मुन्नी जैन ने श्री दिगम्बर जैन सिद्धकूट चैत्यालय टेम्पल ट्रस्ट, अजमेर (राज.) की प्रेरणा एवं सहयोग से अपना यह शोध-प्रबन्ध पर्याप्त परिश्रमपूर्वक तैयार किया था, और यह प्रकाशन की प्रतीक्षा में था। अब इसका गरिमापूर्ण प्रकाशन होना जैनसमाज के लिए ही नहीं भारतीय दर्शन एवं हिन्दी-साहित्य के अध्येताओं के लिए भी प्रसन्नता का समाचार है।

इस शोध-प्रबन्ध में कुल चार अध्यायों के द्वारा विदुषी-लेखिका ने पं. सदासुखदास जी कासलीवाल का जीवन परिचय तो ऐतिहासिक दृष्टि से प्रस्तुत किया ही है, साथ ही उनके पूर्ववर्ती और समकालीन जैन एवं जैनेतर हिन्दी-गद्यकारों का परिचय देकर एक महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। तृतीय एवं चतुर्थ अध्यायों में सदासुखदास जी के साहित्य में निहित दार्शनिक वैशिष्ट एवं भाषाशैलीगत वैशिष्ट्य का परिश्रमपूर्वक आकलन प्रस्तुत किया है। इन सबके द्वारा यह शोध-प्रबन्ध निश्चितरूप से महनीय बन सका है।

ऐसे महत्त्वपूर्ण प्रकाशन के लिए प्रकाशन-संस्थान तो अभिनंदनीय हैं ही, साथ ही विदुषी लेखिका भी ऐसे उपयोगी शोधपूर्ण-ग्रन्थ के निर्माण के लिए बधाई की पात्र हैं। —सम्पादक **

(7)

पुस्तक का नाम : जीवन्धरचम्पू-सौरभ
लेखिका : डॉ. (श्रीमती) राका जैन
प्रकाशक : जैनमिलन, गोमती नगर, लखनऊ (उ.प्र.)
संस्करण : प्रथम, 2002 ई.
मूल्य : 100/- (डिमाई साईज़, पेपरबैक, लगभग 220 पृष्ठ)

जैनसमाज की विदुषी डॉ. राका जैन द्वारा निर्मित यह शोध-प्रबन्ध एक महान् जैन कवि के कालजयी-ग्रन्थ का सक्षम आकलन प्रस्तुत करता है। इसमें कुल दो खण्ड हैं, जिनमें प्रथम खण्ड में छः अध्यायों द्वारा इस ग्रन्थ का साहित्यिक मूल्यांकन प्रस्तुत किया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गया है, तथा द्वितीय खण्ड में चार अध्यायों द्वारा सांस्कृतिक एवं शास्त्रीय दृष्टि से मूल्यांकन प्रस्तुत किया है।

जीवन्धरचम्पू के रचयिता महाकवि हरिचंद्र न केवल जैन-साहित्य के अपितु सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मय के सुप्रसिद्ध हस्ताक्षर हैं। संस्कृत-साहित्य के जैनेतर कवियों ने भी मुक्तकंठ से उनकी काव्य-प्रतिभा एवं साहित्यिक गरिमा को अपने यशोवचनों द्वारा अनेकत्र अभिनंदित किया है। ऐसे महान् कवि की अनुपम कृति का बहुआयामी दृष्टि से मूल्यांकन प्रस्तुत करनेवाली यह शोधपूर्ण कृति निश्चय ही न केवल जैनसमाज के धर्मानुरागियों के लिए, अपितु समस्त भारतीय साहित्य के जिज्ञासुओं एवं अनुसंधाताओं के लिए भी अत्यंत उपयोगी है, और संग्रहणीय भी है।

ऐसे महनीय प्रकाशन के लिए प्रकाशक संस्थान के साथ-साथ विदुषी लेखिका भी हार्दिक बधाई और अभिनंदन की पात्र हैं। —सम्पादक **

(8)

पुस्तक का नाम : भक्ति प्रसून (कविता संग्रह)
लेखक : इंजीनियर अरुण कुमार जैन
प्रकाशक : दिवाकीर्ति शिक्षा एवं कल्याण समिति, ललितपुर-284403 (उ.प्र.)
संस्करण : इन्द्रधनुषी आवरण, पुस्तकालय संस्करण
मूल्य : मूल्य 21 रुपए

मुझे कवि-इंजीनियर श्री अरुण कुमार जैन का 'भक्ति-प्रसून' नामक कविताओं का संग्रह-ग्रंथ हस्तगत हुआ, पढ़कर सुखद आश्चर्य हुआ। अध्यवसाय से इंजीनियरिंग, सेवाकर्म वाले व्यक्ति में संवेदनशीलता, भावुकता एवं सहज सहृदयता सचमुचही अद्भुत लगा। उनकी अध्ययनशीलता कहें अथवा पूर्वजन्म का संस्कार, उनकी कविता 'कितने लघु... कितने महान्' (पृ.70) में जहाँ 'अणोरणीयान महतो महीयान' की ऋर्षि-मुनियों की विराट कल्पना साकार हुई है, वहीं 'शिक्षा' (पृ.75) नामक कविता बड़े-बड़े राष्ट्रकवियों की भावनाओं को मूर्त रूप देती सी प्रतीत होती है।

सचमुच ही इसे प्रकृति की भूल ही कहा जाएगा कि एक कवि-हृदय अभियान्त्रिकी के क्षेत्र में चला गया जबकि उसे साहित्य के क्षेत्र में आना चाहिए था। किन्तु अब तो यह मानना चाहिए कि प्रकृति ने अपनी भूल स्वीकार ली है। इसलिए उसने कवि के व्यक्तित्व को द्विगणित कर दिया है।

प्रस्तुत संग्रह की सभी कविताएँ हृदय की पूर्व सुरभित भावनाओं के साथ स्वतः स्फूर्त लगी तथा वे उसी प्रकार सरस एवं मधुर हैं, जिस प्रकार इक्षुयष्टि का कण-कण। उसकी भाषा भावनुगामिनी है और मुद्रण निर्दोष एवं नयनाभिराम।

—प्रो. (डॉ.) राजाराम जैन, *आरा (बिहार)* **

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक विशेष पत्र

इन्दौर

24.3.2003

श्री डॉ. सुदीप जी जैन !

सस्नेह जयजिनेन्द्र।

पत्र मिला। आपको जो प्राकृतभाषा और साहित्य-विषयक 'राष्ट्रपति-पुरस्कार' मिला है, यह आपकी विवेकपूर्वक तपश्चर्या का परिणाम है। उसमें परमपूज्य आचार्यश्री का शुभाशीर्वाद एवं मार्गदर्शन रहा है। भगवान् पार्श्वनाथ और श्रीराम को जो जगत्पूज्यता प्राप्त हुई, उसमें उनका घोर उपसर्ग आने पर भी अविचलित रहना ही कारण है। उन्हीं के लिए एक श्लोक प्रसिद्ध है—

आपद्गत: खलु महाशय चक्रवर्ती, विस्तारयत्यकृतपूर्वमुदारभावम्।
कालागुरुर्दहनमध्यगत: समन्तात्, लोकोत्तरं परिमलं प्रकटीकरोति।।

इसका सरल हिन्दी-भावानुवाद निम्नप्रकार है :—

सुर्खरू होता है इन्सान, आफतें आने के बाद।
रंग लाती है हिना, पत्थर पे घिस जाने के बाद।।

श्लोक में 'अगुरु' के जलने से सुगंध-प्रसारण का उदाहरण है। नीचे उदाहरण हिना के घिसने से सुगंध के फैलने का है।

मुझे याद आती है शौरसेनी प्राकृत के महत्त्व को जनता के समक्ष प्रगट करने के लिए आप लोगों ने कितना परिश्रम किया और कटु-आलोचनाओं का सामना किया। आज भी विद्वान् तीर्थंकर की वाणी को सर्वभाषामय न मानकर अर्द्धमागधी नाम से ही उसे सिद्धकर श्वेताम्बर मत का महत्त्व घोषित करना चाहते हैं। डॉ. हीरालाल जी आदि के द्वारा प्रतिपादित 'दिगम्बराचार्यों के शास्त्रों की भाषा शौरसेनी है'— इस मत के आज भी ये विरोधी बने हुए हैं।

आपने शौरसेनी व्याकरण, साहित्य की पुस्तकें रचकर उन्हें दिल्ली के श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ (मानित विश्वविद्यालय) में परमपूज्य आचार्यश्री की आज्ञा से पाठ्यक्रम में रखकर विद्यार्थी तैयार किये। क्या यह आपका कम परिश्रम है? आज भी इसी कार्य में पत्रिका और विद्वानों में प्रचार द्वारा आपने जीवन को समर्पित कर सफलता की ओर अग्रसर हैं।

इन सब कार्यों के परिणामस्वरूप यदि आपको राष्ट्रपति द्वारा सम्मानित किया गया, तो इसमें क्या आश्चर्य है?

गुणा: पूजास्थानं गुणिषु न च लिंगं न च वय:।

परमपूज्य आचार्यश्री से सविनय नमोऽस्तु। *शुभाकांक्षी*— नाथूलाल जैन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अभिमत

✪ 'प्राकृतविद्या' का अक्तूबर-दिसम्बर, 2002 के अंक का आवरण-पृष्ठ एक सुन्दरतम जीवन का संकेत देता है, जिसमें न कोई बड़ा है न छोटा। समता का द्योतक है। मंगलाचरण श्री ऋषभदेव जी के चौबीस विशेषणों द्वारा वन्दना किए जाने पर विदित करता है कि वे अजेय महापुरुष थे, अत: उनको समादर से देखना ही योग्य होगा।

अंक का 'सम्पादकीय' धर्म के संबंध में पक्ष-विपक्षी संबंधी विवेचनात्मक पहल द्वारा वास्तविकता प्रकट करता है। धर्म के नाम पर विरोध और वैमनस्य पैदा कर साम्प्रदायिकता फैलाने वाले व्यक्तिविशेष, वर्गविशेष, जातिविशेष के प्रचारक कहे जा सकते हैं; परन्तु 'धर्मात्मा' नहीं समझे जा सकते। धर्मात्मा से तो किसी बाल की पक्षपात की आशा करना ही व्यर्थ है, वह तो सबके 'जनहिताय' बात करता है— वह भी नि:स्वार्थ भावना से। ऐसा व्यक्ति परमपूज्य और आदर का पात्र होता है, तिरस्कार का नहीं। मानव का वह सच्चा हितैषी होता है और जीवन सार्थक बनाने हेतु ही उसकी भावना होती है— इसे कभी विस्मरण नहीं किया जाना चाहिए। वास्तव में यह चिन्तनीय विषय है।

'जगद्गुरु' के विभिन्न उदाहरणों द्वारा गुरु की महिमा का विवेचन बड़ी कुशलता से किया गया है। उसे सर्वोपरि समझा जाने का प्रयत्न सार्थक है। 'जैनधर्म में राष्ट्रधर्म की क्षमता विद्यमान है', 'जैन-परम्परा में आचार्यत्व' तथा 'जैनधर्म-दर्शनके अहिंसा विचार की प्रासंगिकता' संबंधी आलेख संक्षिप्त होकर भी सारगर्भित है, चिन्तन, मनन योग्य होकर ध्यान देने योग्य है। महावीर संबंधी 'वड्ढमाणचरिउ' एक नवीन ग्रंथ हमारे सम्मुख आता है— गंभीरता से विचार योग्य है। मिश्रीलाल गंगवाल जी का व्यक्तिपरक लेख उनके गुणों को जानने के लिए अच्छा है— इन्सानियत झलकती है। डॉ. जगदीश चन्द्र बसु का लेख भी ज्ञानवर्द्धक होकर आकृष्ट करता है। 'कातन्त्र और कच्चायन का तुलनात्मक अध्ययन' निसन्देह शोधपूर्ण लेख है, जो नवीनता के साथ विषय का विश्लेषण करता है। 'दर्शनशास्त्र अन्तर्मुखी बनाता है और प्रदर्शन बहुर्मखी', 'ज्ञान और विवेक' संक्षिप्त होते हुए भी ज्ञानवर्द्धक हैं।

'पुस्तक-समीक्षा' तथा 'समाचारदर्शन' सदैव की भाँति ध्यान देने योग्य होकर अनेक बातें सामने रखते हैं। अंक की अन्य सामग्री भी सुन्दर होकर पठनीय है। सुप्रीम कोर्ट संबंधी महत्त्वपूर्ण निर्णय बरबस ध्यान आकृष्ट करता है। इसप्रकार अंक विविध पठनीय सामग्री से पूर्ण होकर कुशलता व दूरदर्शिता का प्रमाण है। अंक का आवरण-पृष्ठ जैनसमाज

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के दो नररत्न राजा हरसुखराय जी जैन एवं राजा सुगनचन्द जैन के चित्रों से सुसज्जित है। ये नररत्न दिल्ली के मुगल बादशाह शाहआलम द्वितीय (1759-1806 ई.) के शासनकाल में थे। अत: श्रेयस्कर स्थान देना स्वाभाविक है।

अंक सदैव की भांति सुन्दर व पठनीय सामग्री से पूर्ण है। सहयोगी भाई तथा संपादक बधाई के पात्र है।

—मदनमोहन वर्मा, *ग्वालियर (म.प्र.)* ✱✱

❂ 'प्राकृतविद्या' वर्ष 14, अंक 3 मेरे समक्ष है। हर अंक की भाँति इस अंक की प्राप्ति होते ही आद्योपान्त पढ़ चुका हूँ। मुखपृष्ठ पर चित्रित 'नीर-क्षीर विवेक का प्रतिमान-राजहंस' विद्वानों की ओर इशारा कर रहा है कि विद्वानों की दृष्टि इसप्रकार होना चाहिये, किन्तु आज की स्वार्थलिप्सा की दौड़ में इसकी कल्पना ही कर सकते हैं।

सम्पूर्ण पत्रिका ज्ञाननिधि से ओतप्रोत है। पत्रिका निरन्तर विकास-पथ पर बढ़ती जाए।

—ब्र. संदीप 'सरल', *अनेकान्त ज्ञान मंदिर, बीना, सागर (म.प्र.)* ✱✱

❂ 'प्राकृतविद्या' का अक्तूबर-दिसम्बर 2002 अंक मिला, आभार। मुखपृष्ठ की चित्रावली अत्यन्त मनमोहक लगी, इस अंक में परमपूज्य आचार्यश्री के अमृतमयी लेख (वचन) 'जगद्‌गुरु' और स्वयं आपका लेख 'जैन-परम्परा में आचार्यत्व' अधिक ज्ञानवर्धक लगे। निश्चितरूप से भाव-चेतना जागृत हुई। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि आपके प्रयास अत्यन्त स्तुत्य हैं, यही कारण है कि इसमें शोधपरक लेखों और अन्य महत्त्वपूर्ण सामग्री का समावेश रहता है, जो इन्हें संग्रहणीय बनाता है। आपको अनेकानेक बधाईयाँ।

—सुन्दर सिंह जैन, *छत्ता प्रताप सिंह, किनारी बाजार, दिल्ली* ✱✱

❂ जब से मैंने 'प्राकृतविद्या' का आद्योपान्त अध्ययन किया है, तब से इसने मेरे ज्ञानार्जन में न केवल वृद्धि की है, बल्कि एक जीवन की दशा एवं दिशा दोनों को मूर्तरूप दिया है। कभी-कभी उसमें जो नवीन विचारधाराओं की रूपरेखा प्रस्तुत की जाती है, वह आद्योपान्त ग्राह्य और मनन-योग्य होती है। प्राकृतविद्या में विभिन्न विद्वज्जनों के लेख आज के वातावरण में न केवल शोधपूर्ण हैं, बल्कि उनकी असाध्य-साधना के प्रतिफल भी है। मेरा विश्वास है कि प्राकृतविद्या आप जैसे सुधीजनों की साधना से निरन्तर अपने प्रगति के पथ पर अग्रसर होती रहेगी। इति।

—डॉ. ए.आर. सगर, *ग्वालियर (म.प्र.)* ✱✱

❂ आपके द्वारा प्रेषित 'प्राकृतविद्या' मिली। यह बहुत ही उपयोगी शोधपत्रिका है।

—डॉ. शैलेन्द्र कुमार रस्तोगी, *राजा बाजार, लखनऊ (उ.प्र.)* ✱✱

❂ आप द्वारा प्रकाशित त्रैमासिक पत्रिका 'प्राकृतविद्या' का गत दो वर्षों से पाठक होने का सौभाग्य मिल रहा है। अब तक के सभी अंक ज्ञानवर्धन के लिये उपयोगी हैं। सभी लेखकों के लेख चिंतन योग्य हैं। यह पत्रिका मेरे जीवन को परिवर्तित करने में सहायक है। यह सब मनोगत विचार आपकी पत्रिका को बधाई देने हेतु लिखने का साहस कर रहा हूँ।

—चंदनमल जैन, *दुर्गापुरा-जयपुर (राजस्थान)* ✱✱

❂ प्राकृतविद्या पत्रिका वर्तमान युग में अनूठी है; सामग्री सारगर्भित रहती है।

—नरेन्द्र कुमार जैन, *महावीर नगर, भोपाल (म.प्र.)* ✱✱

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समाचार दर्शन

महावीर-जन्मभूमि के विषय में फरीदाबाद में पारित प्रस्ताव

जैनाचार्यों ने जैनधर्म के चौबीसवें तीर्थंकर महावीर की जन्मस्थली कुण्डपुर (विदेह) को मान्य किया है। आचार्य पूज्यपाद की 'निर्वाणभक्ति', आचार्य जिनसेन के 'हरिवंशपुराण', आचार्य गुणभद्र के 'उत्तरपुराण', श्री असग के 'वर्द्धमानचरित', आचार्य दामनन्दि के 'पुराणसारसंग्रहान्तर्गत वर्द्धमानचरित', विबुध श्रीधर के 'वड्ढमाणचरिउ', महाकवि पुष्पदंत के 'वीरजिणिंदचरिउ', आचार्य सकलकीर्ति के 'वीरवर्द्धमानचरित', मुनि धर्मचन्द के 'गौतमचरित्र' एवं पंडित आशाधर के 'त्रिषष्ठिस्मृतिशास्त्र' से भी तीर्थंकर महावीर की जन्मस्थली कुण्डपुर (विदेह) ही सिद्ध होती है। आचार्य वीरसेन, आचार्य गुणभद्र, महाकवि विमलसूरि, आचार्य रविषेण आदि जिन-जिन पूर्वाचार्यों ने मात्र कुण्डपुर लिखा है, उसका तात्पर्य कुण्डपुर (विदेह) ही है।

वर्तमान समय में आचार्य ज्ञानसागर ने अपने महाकाव्य 'वीरोदय' में तथा आर्यिका ज्ञानमती व आर्यिका चन्दनामती ने अपनी पूर्व-रचनाओं में वैशाली स्थित कुण्डपुर (विदेह) को ही भगवान् महावीर की जन्मस्थली स्वीकार किया है।

भारत सरकार, बिहार सरकार, अ.भा.दि. जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी तथा अन्य संस्थाओं, जैन-जैनेतर इतिहासज्ञों, शिक्षाविदों, पुरातत्त्वविदों, मनीषी लेखकों ने वैशाली स्थित कुण्डपुर (विदेह) को ही भगवान् महावीर की जन्मस्थली स्वीकार किया है। यह स्थान कुण्डपुर (विदेह) वर्तमान में मुजफ्फरपुर जिले के वैशाली निकटस्थ वसाढ़ नगर के समीप वासोकुण्ड है। लोक-परम्परा से आज भी यहाँ की ढाई बीघा जमीन को भगवान् महावीर की जन्मस्थली होने के कारण पवित्र मानकर 'अहल्य' (जिस भूमि पर खेती हेतु हल न चलाया जाए) माना जाता है एवं दीपावली के दिन दीपक जलाया जाता है।

उक्त संदर्भों के प्रकाश में 'श्री अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद्' आज दिनांक 8 फरवरी, 2003 शनिवार को श्री आदिनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर, सैक्टर-10, फरीदाबाद में आयोजित पंचकल्याणक-महोत्सव के पावन अवसर पर सम्पन्न अपनी बैठक में कुण्डपुर (विदेह) (वासोकुण्ड, वैशाली) को ही भगवान् महावीर की जन्मस्थली की पुष्टि करती है। शासन तथा समग्र जैनसमाज से अनुरोध करती है कि सभी सद्भावना एवं परस्पर सहयोगपूर्वक इसके विकास में अपना सहयोग देवें।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

—प्रस्तावक : **प्रो. सुदर्शनलाल जैन**, *वाराणसी (उ.प्र.)*।

—*अनुमोदक* : **प्रो. डॉ. एस.पी. पाटिल**, *धारवाड़*। **आचार्य जिनेन्द्रकुमार जैन**, *सासनी*। **डॉ. गंगाराम गर्ग**, *भरतपुर*। **पं. विमलकुमार जैन**, *सोंरय, टीकमगढ़*। **प्रा. कुन्दनलाल जैन**, *दिल्ली*। **डॉ. सुपार्श्वकुमार जैन**, *बड़ौत*। **अनूपचंद जैन एडवोकेट**, *फिरोजाबाद* **

मैसूर विश्वविद्यालय एवं श्रवणबेल्गोला के प्राकृत-संस्थान में विशेष व्याख्यान

दिनांक 6 एवं 7 फरवरी, 2003 को कुन्दकुन्द भारती के उपनिदेशक एवं प्राकृतविद्या के संपादक डॉ. सुदीप जैन मैसूर एवं श्रवणबेल्गोला में वहाँ के संस्थानों के विशेष निमंत्रण पर पधारे, तथा दिनांक 6 फरवरी को मैसूर विश्वविद्यालय के 'जैनविद्या एवं प्राकृत' विभाग में उनका **'वर्तमान संदर्भों में प्राकृतभाषा एवं साहित्य के प्रचार-प्रसार की आवश्यकता एवं उपयोगिता'** विषय पर अत्यंत सारगर्भित व्याख्यान हुआ, जिसमें उन्होंने राजधानी नई दिल्ली में कुन्दकुन्द भारती की प्रेरणा से प्राकृतभाषा और साहित्य के क्षेत्र में संचालित गतिविधियों का प्रभावी परिचय देते हुए देशभर में प्राकृतभाषा और साहित्य के अध्ययन-अध्यापन के लिए स्वतंत्र-विभाग निर्माण किए जानें की परियोजना पर दिशा-निर्देश प्रस्तुत किए। उन्होंने स्पष्ट किया कि "सरकार से पहिले आर्थिक संसाधन की मांग किए बिना यह आवश्यक है कि हम प्राकृतभाषा और साहित्य के प्रति लोगों में आकर्षण उत्पन्न करें, तथा बड़ी संख्या में इसके पाठ्यक्रम विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों एवं अन्य शैक्षणिक संस्थाओं में संचालित कर सरकार को इनकी अनिवार्यता का बोध कराएं और फिर इनके स्वतंत्र विभाग खोलने के लिए पुरजोर प्रयत्न करें।"

दिनांक 7 फरवरी, '03 को श्रवणबेल्गोला के 'राष्ट्रीय-प्राकृत अध्ययन संस्थान' में शोधछात्रों एवं जिज्ञासुओं के बीच उनका विशेष व्याख्यान आयोजित किया गया, जिसमें उन्होंने प्राकृतभाषा और साहित्य के क्षेत्र में शोध की अपार संभावनाओं, विषयों एवं परियोजनाओं के बारे में केन्द्र सरकार, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग एवं विभिन्न शैक्षिक संस्थाओं से लिए जा सकने वाले सहयोगों का परिचय देते हुए राष्ट्रहित, समाजहित एवं साहित्य के हित में प्राकृतभाषा और साहित्य के क्षेत्र में बहुआयामी शोध के कार्यों को प्रोत्साहित करने का दिशाबोध दिया।

श्रवणबेल्गोला में भट्टारक श्री चारुकीर्ति स्वामी जी के साथ भी उनकी दो घंटे की गम्भीर-चर्चा हुई, जिसमें प्राचीन ताड़पत्रीय पाण्डुलिपियों के संरक्षण तथा प्राकृतभाषा और साहित्य के क्षेत्र में बहुआयामी कार्ययोजनाओं के निर्माण के विषय में व्यापक विचार-विमर्श हुआ। पूज्य स्वामीजी ने डॉ. सुदीप जैन को शॉल एवं श्रीफल भेंट कर सम्मानित किया।

इस सम्पूर्ण कार्यक्रम में 'राष्ट्रीय प्राकृत अध्ययन संस्थान' श्रवणबेल्गोला के निदेशक डॉ. एन. सुरेश कुमार का अनन्य निरन्तर सहयोग रहा। तथा मैसूर विश्वविद्यालय के जैनविद्या एवं प्राकृतविभाग की माननीया अध्यक्षा एवं विभाग के समस्त विद्वान् अध्यापकों ने भी महत्त्वपूर्ण सहयोग दिया। —**एन. सुरेश कुमार**, *श्रवणबेल्गोला (कर्नाटक)* **

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'खारवेल-महोत्सव' गरिमापूर्वक सम्पन्न

उड़ीसा सरकार के संस्कृति मंत्रालय, उत्कल संस्कृति विश्वविद्यालय, भुवनेश्वर एवं के. एन. फाउण्डेशन के संयुक्त तत्त्वावधान में दिनांक 8 से 14 फरवरी, '03 तक आयोजित खारवेल महोत्सव में दिनांक 13 फरवरी, '03 को 'जैनधर्म एवं संस्कृति से खारवेल के सम्बन्ध' के विषय में विशेष कार्यक्रम आयोजित किया गया, जिसमें विभिन्न सांस्कृतिक-कार्यक्रमों के साथ-साथ एक विचार-गोष्ठी भी आयोजित हुई। इस गोष्ठी में उड़ीसा के माननीय संस्कृति मंत्री, उड़ीसा उच्च न्यायालय के न्यायाधीश, उड़ीसा से राज्यसभा सांसद, उत्कल संस्कृति विश्वविद्यालय के कुलपति तथा अन्य अनेकों गणमान्य विद्वानों और महानुभावों के साथ-साथ विशेषरूप से आमंत्रित विद्वानों में **डॉ. सुदीप जैन** दिल्ली एवं **डॉ. अभय प्रकाश जैन** ग्वालियर, **डॉ. रमेशचन्द्र जैन** बिजनौर भी सम्मिलित हुए।

इस अवसर पर **डॉ. सुदीप जैन** ने अपने मुख्य-वक्तव्य में सम्राट् खारवेल के शिलालेख का बहुआयामी महत्त्व बताते हुए इस क्षेत्र की सांस्कृतिक एवं पुरातात्त्विक महत्ता पर प्रकाश डाला, और खण्डगिरि-क्षेत्र पर जैन गुफाओं में हो रहे अनधिकृत अतिक्रमण को संस्कृति एवं पुरातत्त्व के साथ खिलवाड़ बताते हुए राज्य सरकार एवं केन्द्रीय संस्कृति मंत्रालय, पुरातत्त्व विभाग आदि के अधिकारियों और स्थानीय प्रशासन से पुरजोर मांग की कि "वे न्यायालय के निर्णय का सम्मान करते हुए अविलम्ब अतिक्रमण को हटाए, और क्षेत्र की गरिमा बनाने में योगदान दें।" उन्होंने स्पष्ट किया कि "पूज्य आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज जब क्षुल्लक अवस्था में थे, तब महीनों आकर इस शिलालेख का अध्ययन करते रहे, और उन्हीं की प्रेरणा से आठ वर्ष पहले 'खारवेल-महोत्सव' का शुभारंभ हुआ। आज भी उनके पावन-आशीर्वाद से सारे देश की जैनसमाज एवं विद्वान् इस क्षेत्र के प्रति तन-मन-धन से समर्पित होकर योगदान करने के लिए तैयार हैं। आवश्यकता है दृढ़ इच्छाशक्ति और निष्ठापूर्वक कार्य करने की।" उन्होंने बताया कि सम्राट् खारवेल और उड़ीसा की सांस्कृतिक विरासत को विश्वस्तर पर प्रचारित करने के लिए ही पूज्य आचार्यश्री के आशीर्वाद से राजधानी नई दिल्ली में कुन्दकुन्द भारती प्रांगण में बन रहे विशाल पुस्तकालय भवन एवं सभागार का नामकरण 'सम्राट् खारवेल' के नाम से किया जा रहा है।

डॉ. सुदीप जैन के वक्तव्य की माननीय संस्कृति मंत्री जी, उच्च न्यायालय के न्यायाधीश महोदय तथा उत्कल संस्कृति विश्वविद्यालय के कुलपति महोदय ने भूरि-भूरि प्रशंसा की और पूज्य आचार्यश्री के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हुए यह वचन दिया कि स्थानीय प्रशासन द्वारा अतिक्रमण हटाकर इस क्षेत्र की गरिमा को शीघ्र बहाल किया जाएगा। तथा यहाँ तीर्थयात्रियों और पर्यटकों के लिए समुचित सुविधाओं का विकास किया जाएगा।

उड़ीसा की जैनसमाज के प्रमुख श्री शांतिकुमार जी जैन ने इस अवसर पर बोलते हुए यह भावना व्यक्त की कि सम्राट् खारवेल के शिलालेख के प्राचीन मनीषियों द्वारा तैयार किए

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गए पाठों का प्रामाणिकरूप से तुलनात्मक सम्पादन कर उसे मूलरूप में ब्राह्मी लिपि, देवनागरी लिपि, उड़िया लिपि एवं अंग्रेजी में शिलापटों पर लिखाया जाए; साथ ही इसका हिन्दी, अंग्रेजी एवं उड़िया भाषाओं में अनुवाद करवाकर भी साथ-साथ प्रस्तुत किया जाए। ये शिलापट हाथीगुम्फा के बाहर ही पुरातत्त्व विभाग की देखरेख में गरिमापूर्वक लगाए जाए, ताकि आनेजाने वाले पर्यटक एवं तीर्थयात्री इसके संदेशों से परिचित होकर यहाँ की गरिमा को जान सकें। उन्होंने सम्राट् खारवेल के अभिलेख में निहित जनदृष्टि के तथ्यों एवं अन्य समस्त बिन्दुओं पर एक प्रामाणिक पुस्तक के निर्माण और प्रकाशन की आवश्यकता पर भी बल दिया। उनके अनुरोध पर डॉ. सुदीप जैन ने यह गुरुतर कार्य प्रारम्भ करने का वचन दिया। समारोह का संचालन उत्कल संस्कृति विश्वविद्यालय के कुलपति श्री नरेन्द्र कुमार जी मिश्रा ने किया। —अरुण कुमार जैन, *भुवनेश्वर (उड़ीसा)* **

खण्डगिरि-उदयगिरि सिद्धक्षेत्र में तीर्थंकर वृषभदेव (कलिंग जिन) की प्रतिमा का नवीन वेदी पर पुर्नस्थापना का ऐतिहासिक कार्यक्रम सम्पन्न

श्री 1008 दिगम्बर जैन 'खण्डगिरि-उदयगिरि' सिद्धक्षेत्र में खण्डगिरि पर्वत पर दिनांक 6 से 8 फरवरी पर 3 दिन के भव्य आयोजन के साथ नवीन वेदिका पर कलिंग जिन 'तीर्थंकर वृषभदेव' की प्राचीन प्रतिमा की पुर्नस्थापना की गई।

भारत के पूर्व में स्थित यह सिद्धक्षेत्र सम्पूर्ण भारत में कुछ अनचीन्हा सा हो गया है, इसलिए अधिकांश जैन-यात्री श्री सम्मेद शिखर जी से ही अपनी यात्रा समाप्त कर वापिस चले जाते हैं। पर यह आयोजन इस स्थिति को बदलकर सम्पूर्ण राष्ट्र को इस क्षेत्र की पहचान दिलाएगा। —यह विश्वास परमपूज्य ऐलक 105 श्री गोसल सागर जी ने व्यक्त किया।

कटक में वर्षायोग के समापन के पश्चात् परमंपूज्य 105 गोसल सागर जी महाराज का यहाँ पदार्पण हुआ। उनके आते ही यहाँ दैनिक पूजन व तीन बार नित्य प्रवचन के कार्यक्रम प्रारम्भ हो गए। अपनी नियमित पर्वत वंदना से पूज्य श्री ने तीर्थंकर वृषभदेव की प्राचीन प्रतिमा के स्थापना की विसंगतियों की ओर ध्यान दिलाया, जिसे समाज ने पूरा करने का संकल्प लिया व एक नवीन वेदी की स्थापना कर कलिंग जिन तीर्थंकर वृषभदेव की प्राचीन प्रतिमा की पुर्नस्थापना कर संकल्प लिया। कार्यक्रम की शुभ तिथियाँ 6 से 8 फरवरी तय की गई। भुवनेश्वर स्थित छोटी सी समाज के लिए पर्वत पर विशाल आयोजन का संकल्प एक विराट दुष्कार्य जैसा ही था पर गुरु-आशीर्वाद व दृढ़ संकल्प से यह महान् कार्य सानंद सम्पन्न हुआ।

दिनांक 6 फरवरी को घट यात्रा ध्वजारोहण वेदी व भूमि-मंडप-शुद्धि तथा दिनांक 7 फरवरी को पंचपरमेष्ठी-विधान का कार्यक्रम पर्वत पर सम्पन्न हुआ। इसके पूर्व दिनांक 31/1/02 से 5/2/02 तक जाप्य-कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। दिनांक 8 फरवरी को उषाकाल से दैनिक पूजा के कार्यक्रम पर्वत पर प्रारंभ हुए तत्पश्चात विश्वशांति-हेतु हवन की पवित्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आहुतियों से सम्पूर्ण वातावरण पवित्र किया गया। इसके बाद तीर्थंकर वृषभदेव की प्रतिमा जी की नवीन वेदी पर स्थापना कार्य सैकड़ों श्रावकों ने हर्ष व उल्लास के साथ सम्पन्न कराया। इस सम्पूर्ण कार्यक्रम का आयोजन पू. ऐलक 105 श्री गोसल सागर जी के नेतृत्व मार्गदर्शन व कठोर परिश्रम तथा संरक्षण में सम्पूर्ण हुआ। इस पावन कार्यक्रम में सहयोग के लिए ब्रह्मचारी बहिन कु. राखी जैन व श्री अनुराग जैन का समाज द्वारा अभिनंदन किया गया।

इस सम्पूर्ण आयोजन में श्री अजीत कुमार चौधरी, श्री डूंगरमल, कासलीवाल, श्री प्रेमचंद्र चौधरी व श्री प्रभात कुमार जैन के अनवरत अथक प्रयासों व समर्पण-भाव की सर्वत्र सराहना की गई। श्री हेमचन्द्र चौधरी एवं अन्य कई श्रावकजनों के लिए यह आयोजन उनकी जीवन-दिशा बदलनेवाला रहा।

—अरुण कुमार जैन, *भुवनेश्वर (उड़ीसा)* **

प्राकृत पत्राचार-पाठ्यक्रम

दिगम्बर जैन अतिशयक्षेत्र, श्री महावीरजी द्वारा संचालित 'अपभ्रंश साहित्य अकादमी' द्वारा 'पत्राचारं प्राकृत सर्टिफिकेट पाठ्यक्रम' प्रारम्भ किया जा रहा है। सत्र 1 जुलाई, 2003 से प्रारम्भ होगा। नियमावली एवं आवेदन-पत्र दिनांक 25 मार्च से 15 अप्रैल, 2003 तक अकादमी कार्यालय, दिगम्बर जैन नसियाँ भट्टारकजी सवाई रामसिंह रोड, जयपुर-302004 से प्राप्त करें। कार्यालय में आवेदन-पत्र पहुँचने की अन्तिम तारीख 15 मई, 2003 है।

—सम्पादक **

छत्तीसगढ़ में जैनसमुदाय अल्पसंख्यक घोषित

छत्तीसगढ़ सरकार द्वारा जैनसमाज को अल्पसंख्यक के रूप में घोषित किया गया है, इस बारे में एक अधिसूचना जारी की गई। जिसका प्रारूप निम्नानुसार है—

आदिमजाति एवं अनुसूचित जाति विकास विभाग

मंत्रालय, दाऊ कल्याण सिंह भवन, रायपुर

रायपुर, दिनांक 24 दिसम्बर 2002

अधिसूचना

क्रमांक एफ/5882/2614/आजावि/2002 — छत्तीसगढ़ राज्य अल्पसंख्यक आयोग अधनियम, 1996 की धारा 2 के खण्ड (ग) के उप-खण्ड (दो) द्वारा प्रदत्त शक्तियों को प्रयोग में लाते हुए, राज्य सरकार, एतद्द्वारा, उक्त अधिनियम के प्रयोजन के लिए, छत्तीसगढ़ के मूल निवासी जैन समुदाय को, अल्पसंख्यक समुदाय के रूप में अधिसूचित करती है।

छत्तीसगढ़ के राज्यपाल के नाम से तथा आदेशानुसार,

ए.के. द्विवेदी, संयुक्त सचिव

**

4823

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शिखरजी में 'शाश्वत ट्रस्ट भवन' का लोकार्पण

दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी द्वारा 9 हजार वर्गफुट भूमि पर निर्मित शाश्वत ट्रस्ट भवन के अतिथि-आवास एवं भोजनशाला का लोकार्पण दिनांक 24 जनवरी, 2003 को झारखंड राज्य के महामहिम राज्यपाल श्री एम. रामा जायस तथा धर्मस्थल के धर्माधिकारी श्री वीरेन्द्र हेगड़े ने संयुक्त रूप से किया। इस अवसर पर महामहिम राज्यपाल जी ने पारसनाथ स्टेशन के प्लेटफार्मों को ऊँचा कराने एवं शिखरजी क्षेत्र में यात्रियों के लिए बिजली-पानी, सड़क आदि की समुचित सुविधाएँ उपलब्ध कराने का आश्वासन भी दिया। ज्ञातव्य है कि 'श्री दिगम्बर जैन शाश्वत तीर्थराज सम्मेद शिखर ट्रस्ट' का संचालन समूचे दिगम्बर जैनसमाज द्वारा होता है।

—स्वराज जैन, *नई दिल्ली* **

श्री ओमप्रकाश जी जैन 'पद्मश्री' के अलंकरण से विभूषित

श्री ओमप्रकाश जी जैन

सुप्रसिद्ध समाजसेवी एवं कुन्दकुन्द भारती न्यास के पूर्व-न्यासी धर्मानुरागी श्रीमान् ओमप्रकाश जी जैन को इस वर्ष गणतंत्र-दिवस के सुअवसर पर 'पद्मश्री' के अलंकरण से विभूषित किए जाने हेतु चयनित किया गया है। इस आशय की सूचना भारत सरकार के महामहिम राष्ट्रपति जी की ओर से केन्द्र सरकार द्वारा जारी अधिसूचना में दी गई है। यह समाचार जानते ही राजधानी एवं देश की जैनसमाज में हर्षोल्लास का वातावरण छा गया, एवं श्री जैन को चारों ओर से बधाईयों का तांता लग गया।

ज्ञातव्य है कि धर्मानुरागी श्रीमान् ओमप्रकाश जी जैन विगत पचास वर्षों से भी अधिक समय से परमपूज्य आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज के पावन आशीर्वाद एवं मार्गदर्शन में जैनसमाज एवं भारत-राष्ट्र की सेवा में तन-मन-धन से समर्पित सुप्रतिष्ठित व्यक्तित्व हैं। तथा आपकी गुण-गरिमा, विनम्रता एवं दूरदर्शितापूर्ण कार्यशैली की अपनी एक विशिष्ट पहिचान है। 'श्री कुन्दकुन्द भारती न्यास' एवं 'प्राकृतविद्या-परिवार' के समस्त कार्यकर्त्ताओं एवं सदस्यों की ओर से धर्मानुरागी श्री ओमप्रकाश जी जैन को उनकी इस गरिमापूर्ण उपलब्धि के सुअवसर पर हार्दिक बधाई और अभिनन्दन के साथ-साथ उनके सुदीर्घ, स्वस्थ जीवन एवं उच्चतम लक्ष्यों की प्राप्ति के निमित्त हार्दिक मंगल-कामनाएँ प्रेषित हैं।

—सम्पादक **

'साहू अशोक जैन स्मृति-पुरस्कार' (2003) श्री नीरज जैन को समर्पित

साहू अशोक जैन स्मृति-पुरस्कार समिति, बड़ौत (उ.प्र.) द्वारा प्रवर्तित 'साहू अशोक जैन स्मृति-पुरस्कार' (वर्ष 2003) श्री नीरज जैन, सतनावालों को दिनांक 13 अप्रैल 2003 को पूज्य आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज की पावन सन्निधि में आयोजित भव्य-समारोह में परेड ग्राउण्ड के 'आचार्य कुन्दकुन्द सभामण्डप' में समर्पित किया गया। समारोह के मुख्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अतिथि माननीय श्री शिवराज पाटिल जी, *उपनेता कांग्रेस संसदीय दल* ने पुरस्कार समर्पित किया। समारोह की अध्यक्षता पद्मश्री ओमप्रकाश जैन, *अध्यक्ष संस्कृति फाउण्डेशन* ने की। इस अवसर पर श्री कोकब हमीद, *ग्रामीण अभियंत्रण विकास मंत्री, उ.प्र. सरकार* विशिष्ट-अतिथि के रूप में विराजमान थे। प्रशस्ति-वाचन डॉ. प्रेमसुमन जैन, *उदयपुर* ने किया, तथा विशेष उद्गार प्रो. राजाराम जैन एवं श्री पुनीत जैन ने व्यक्त किए। समागत अतिथियों एवं विद्वानों का भावभीना स्वागत पुरस्कार-समिति के प्रमुख श्री सुखमाल चन्द जैन दालवालों ने किया। —सम्पादक ✱✱

'अहिंसा-पुरस्कार' श्री बालासाहेब जाधव को समर्पित

पद्मश्री प्रताप सिंह जाधव

अहिंसा-प्रसारक ट्रस्ट, मुम्बई द्वारा प्रवर्तित प्रतिष्ठित 'अहिंसा-पुरस्कार' इस वर्ष पद्मश्री प्रताप सिंह जाधव उर्फ बाळासाहेब जाधव कोल्हापुर वालों को दिनांक 14 अप्रैल 2003 को पूज्य आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज की पावन सन्निधि में आयोजित भव्य-समारोह में परेड ग्राउण्ड के 'आचार्य कुन्दकुन्द सभामण्डप' में समर्पित किया गया।

समारोह के मुख्य अतिथि माननीय श्री अशोक जैन, *महापौर दिल्ली नगर निगम* ने पुरस्कार समर्पित किया। समारोह की अध्यक्षता श्री सुभाष चोपड़ा, *अध्यक्ष दिल्ली प्रदेश कांग्रेस कमेटी* ने की। पुरस्कार-समिति की प्रमुख धर्मानुरागिणी श्रीमती सरयू दफ्तरी ने समागत-अतिथियों एवं विद्वानों का भावभीना स्वागत किया। प्रशस्ति-वाचन डॉ. सत्यप्रकाश जैन ने किया। —सम्पादक ✱✱

ब्राह्मी-पुरस्कार (2002) एवं आचार्य भद्रबाहु-पुरस्कार (2003) समर्पित

आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज के 79वें 'पीयूष-पर्व-महोत्सव' के सुअवसर पर दिनांक 22 अप्रैल 2003 को राजधानी नई दिल्ली के लिबर्टी छविगृह के भव्य सभागार में आयोजित समारोह में 'त्रिलोक उच्चस्तरीय अध्ययन एवं अनुसंधान संस्थान' की ओर से प्रवर्तित 'ब्राह्मी-पुरस्कार' प्रो. ओ.पी. अग्रवाल, लखनऊवालों को गरिमापूर्वक समर्पित किया गया।

पूज्य आचार्यश्री के जन्मदिन के प्रसंग में देशभर से श्रद्धालुजन बड़ी संख्या में उपस्थित थे, और इस विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में समारोह के मुख्य-अतिथि केन्द्रीय श्रम मंत्री डॉ. साहिब सिंह वर्मा ने कहा कि भगवान् महावीर के सिद्धांत आज भी सभी के लिए बहुत उपयोगी हैं। हम सबको उनका पालन करना चाहिए। उन्होंने कहा कि जैनदर्शन से उनके जीवन में भी बहुत परिवर्तन हुआ है। आचार्यश्री को भावभीनी विनयांजलि अर्पित करते हुए उन्होंने कहा कि इनका मार्गदर्शन एवं आशीर्वचन देश और समाज को लंबे समय तक मिलता रहे। इनका दृष्टिकोण बहुत विशाल है।

समारोह में भारतीय संस्कृति, पुरातत्त्व, कला, साहित्य एवं ज्ञान-विज्ञान के लिए प्रवर्तित 'ब्राह्मी-पुरस्कार' प्राचीन पाण्डुलिपियों एवं पुरातात्विक सामग्री के संरक्षण एवं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संवर्द्धन के अंतर्राष्ट्रीय विशेषज्ञ प्रो. ओमप्रकाश जी अग्रवाल को माननीय साहिब सिंह जी वर्मा ने बहुमानपूर्वक समर्पित किया। पुरस्कार की सम्मान-राशि एक लाख रुपए का ड्राफ्ट प्रवर्तक संस्थान के मैनेजिंग ट्रस्टी श्री सी.पी. कोठारी ने अग्रवाल जी को समर्पित किया। सम्मान ग्रहण करते हुए डॉ. ओ.पी. अग्रवाल ने कहा कि हमारे देश में जैनधर्म की विशाल धरोहर है, लेकिन लोगों को इसकी जानकारी नहीं है। इस बारे में बहुत कुछ करने की आवश्यकता है। और मैं तन-मन-धन से इस दिशा में समर्पित होकर कार्य करूँगा। उन्होंने 'ब्राह्मी-पुरस्कार' दिए जाने के लिए पुरस्कार-समिति और चयन-समिति के सदस्यों का आभार व्यक्त किया और पूज्य आचार्यश्री के श्रीचरणों में अपनी सहधर्मिणी के साथ कृतज्ञ विनयांजलि समर्पित की।

इसी समारोह में कुन्दकुन्द भारती न्यास द्वारा प्राच्य जैन-ज्योतिष, प्रतिष्ठा-विधि, वास्तुशास्त्र, तत्वज्ञान एवं संहिताविधि आदि के क्षेत्रों में उल्लेखनीय कार्य करनेवाले विद्वान् को सम्मानित करने के लिए इसी वर्ष से प्रवर्तित 'आचार्य भद्रबाहु-पुरस्कार' जैन-प्रतिष्ठा-विधि, वास्तुशास्त्र एवं ज्योतिषशास्त्र के विख्यात विद्वान् पं. बाहुबलि पार्श्वनाथ उपाध्ये, बेलगाम (कर्नाटक) को बहुमानपूर्वक समर्पित किया गया। प्रशस्ति-पत्र, स्मृति-चिह्न आदि का समर्पण माननीय साहिब सिंह वर्मा जी ने किया, तथा एक लाख रुपए की धनराशि का ड्राफ्ट कुन्दकुन्द भारती के न्यासी श्री सतीश जैन (एस.सी.जे.) ने समर्पित किया।

आचार्यश्री ने अपने आशीवर्चन में कहा कि अत्यंत प्राचीनकाल से भारत धर्मप्रधान देश रहा है, सभी शासकों ने सभी धर्मों के सन्तों एवं विद्वानों को आदर दिया है। यदि देश को बचाना है, आगे बढ़ाना है और महान् बनाना है तो विद्वानों का सम्मान करना ही होगा। भारतीय संस्कृति में जाति महत्त्वपूर्ण नहीं रही। यहाँ नीति श्रेष्ठ रही है। भगवान् महावीर ने भी अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह एवं ब्रह्मचर्य जैसे पाँच महान् सिद्धांत विश्व को दिए। यदि इन पर अमल किया जाए तो सारे विवाद खत्म हो जाएं। राम और भरत दोनों राजकार्य से निर्लेप रहे, आज के शासकों के लिए यह एक आदर्श उदाहरण है।

समारोह के अध्यक्ष नवभारत टाइम्स के प्रकाशक श्री पुनीत जैन ने अपनी विनयांजलि में कहा कि आचार्यश्री ज्ञान के आगार हैं इनका क्षणिक सान्निध्य भी हर किसी को पुलकित कर देता है। जिसप्रकार पुरानी पीढ़ी को इनका सान्निध्य लंबे समय तक मिला है, उसीप्रकार युवा पीढ़ी को भी इनका मार्गदर्शन एवं आशीर्वचन दीर्घकाल तक मिलते रहना चाहिए।

समारोह में मूडबद्री के भट्टारक स्वामी जी, पूर्व सांसद निर्मलाताई देशपांडे जी, सांसद डॉ. अनिता आर्य, पूर्व सांसद डालचन्द जैन, साहू रमेश चन्द्र जैन, डॉ. त्रिलोक चन्द कोठारी, जस्टिस बिजेन्द्र जैन, श्रीमती सरयू दफ्तरी, श्री नरेश कुमार सेठी, श्री निर्मल सेठी, श्री अनिल जैन, कोठारी ग्रुप आदि गणमान्य व्यक्तियों ने भी विनयांजलि अर्पित की।

इस अवसर पर श्री नरेन्द्र जैन ग्रेसवे एडवरटाइजर्स द्वारा आचार्यश्री के जीवन चरित्र पर प्रकाशित आकर्षक कैलेंडर का विमोचन श्री वर्मा ने किया। समारोह का गरिमापूर्वक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संयोजन एवं संचालन डॉ. सुदीप जैन ने किया। समारोह का आयोजन दिगम्बर जैन समाज न्यू रोहतक रोड ने किया।

—सम्पादक **

डॉ. सुदीप जैन 'गोम्मटेश विद्यापीठ प्रशस्ति' (2003) से सम्मानित

श्री एस.डी.एम.आई. मैनेजिंग कमेटी, श्रवणबेल्गोला (कर्नाटक) के द्वारा स्थापित एवं संचालित दक्षिण भारत के ज्ञानपीठ-पुरस्कार के समान प्रतिष्ठित 'श्री गोम्मटेश विद्यापीठ पुरस्कार' (वर्ष 2003) का समर्पण-समारोह दिनांक 14.4.2003 को सायंकाल 7.00 बजे श्रीक्षेत्र श्रवणबेल्गोला में भव्य-समारोहपूर्वक सम्पन्न हुआ। इसमें उत्तर भारत के विशिष्ट विद्वान् डॉ. सुदीप जैन को प्राकृतभाषा और साहित्य के क्षेत्र में अनन्य योगदान के लिए इस वर्ष का 'गोम्मटेश विद्यापीठ प्रशस्ति पुरस्कार' सबहुमान समर्पित किया गया। पुरस्कार-समिति के कार्याध्यक्ष श्री ए. शांतिराज शास्त्री एवं कार्यादर्शी श्री एस.एन. अशोक कुमार की देखरेख में गरिमापूर्वक आयोजित इस समारोह में पूज्य भट्टारक स्वस्तिश्री चारुकीर्ति स्वामी जी ने अपने करकमलों से डॉ. सुदीप जैन को माल्यार्पण, शॉल, श्रीफल एवं प्रशस्ति-पत्र सहित यह सम्मान प्रदान किया।

इस समारोह में तीन दक्षिण भारतीय विद्वानों को भी उनके विशेष योगदान के लिए सम्मानित किया गया। वे हैं— 1. श्री पी.सी. गुंडवाडे (रिटायर्ड जज) *बेलगाम*, 2. श्री रतनचंद नेमिचंद कोठी, *इंडी*, 3. डॉ. सरस्वती विजय कुमार, *मैसूर*। इनके साथ ही दिनांक 16.4.2003 को आयोजित कार्यक्रम में 'श्री गोम्मटेश्वर विद्यापीठ सांस्कृतिक पुरस्कार' भी श्रीमती टी.वी. सुमित्रा देवी, *तुमकूर* को समर्पित की गई। एवं श्री सर्वेश जैन, *मूड़बिद्री*, को 'श्री ए.आर. नागराज प्रशस्ति' से सम्मानित किया गया।—डॉ. एन. सुरेश कुमार **

'प्राकृत एवं जैनविद्या शोध-संदर्भ' का नया संस्करण

श्री कैलाशचंद्र जैन स्मृति न्यास, खतौली (उ.प्र.) द्वारा प्रकाशित 'प्राकृत एवं जैनविद्या शोध-संदर्भ' का तृतीय संवर्द्धित संस्करण शीघ्र प्रकाशनाधीन है। इसमें सूचना देने के इच्छुक विद्वान् निम्नलिखित पते पर सम्पर्क करें—

डॉ. कपूर चंद जैन, अध्यक्ष—संस्कृत विभाग, कुन्दकुन्द जैन पी.जी. कॉलेज, खतौली-251201 (उ.प्र.), जिला—मुजफ्फरनगर।

—सम्पादक **

श्री वी. धनकुमार जैन को 'डॉक्टरेट' प्राप्त

तमिलनाडु से उत्तर भारत आकर जैनधर्म-दर्शन एवं अध्यात्म का अध्ययन करनेवाले धर्मानुरागी श्री वी. धनकुमार जैन को 'राजस्थान विश्वविद्यालय' जयपुर (राज.) से पीएच.डी. की शोध-उपाधि प्राप्त हुई है।

आपने डॉ. शीतलचंद जैन के निर्देशन में 'आचार्य कुन्दकुन्द के साहित्य में तत्त्वों का समीक्षात्मक अध्ययन' विषय पर अपना शोध-प्रबन्ध लिखा था।

'प्राकृतविद्या'-परिवार की ओर से हार्दिक बधाई।

—सम्पादक **

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वाजपेयी द्वारा प्राचीन-पांडुलिपियों के संग्रह पर बल

प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने आज देश में बड़े पैमाने पर उपलब्ध प्राचीन पांडुलिपियों के संग्रहण तथा उनके संरक्षण पर जोर देते हुए कहा कि इससे हमारी राष्ट्रीय एकता के नए प्रमाण सामने आएंगे। श्री वाजपेयी ने यहाँ राष्ट्रीय पांडुलिपि मिशन का शुभारंभ करते हुए कहा कि हमारे देश में पांडुलिपियों का अपार-भंडार है। यह अमूल्य-धरोहर कई-संस्थाओं में बिखरी पड़ी है। इनमें से अधिकांश निजी-लोगों के पास पड़ीं हैं। इनमें ज्यादातर असुरक्षित हैं और सूचीबद्ध भी नहीं हैं। इन पर अनुसंधान कर उन्हें प्रकाशित करने की जरूरत है, जो हमारी जीवंत-सभ्यता की विरासत की निशानी हैं। उन्होंने कहा कि इन पांडुलिपियों के संग्रहण और संरक्षण से हमारे आध्यात्मिक, कलात्मक, बौद्धिक और वैज्ञानिक विरासत के बारे में ज्ञान में वृद्धि होगी। उन्होंने कहा कि भारत में 35 लाख से अधिक पांडुलिपियाँ प्राचीन और समसामयिक भाषाओं में उपलब्ध हैं। **—सम्पादक** ✲✲

भाषाओं को बचाने का विश्व-अभियान भारत को शुरू करना चाहिए

नई दिल्ली, 29 अक्तूबर, जनसत्ता। भाषाएँ इस समय संकट में हैं। इसलिए जैसे पर्यावरण को बचाने के लिए विश्व-अभियान सफलतापूर्वक चला है, वैसे ही मनुष्य की विविधता को सुनिश्चित करने के लिए भाषाओं को बचाने का एक विश्व-अभियान भारत को शुरू करना चाहिए। यह बात आज यहाँ 'महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय' के कुलपति **अशोक वाजपेयी** ने कही। वे '21वीं सदी की वास्तविकता: भाषा, संस्कृति और टेक्नोलॉजी' विषय पर तीन दिवसीय सेमिनार के उद्‌घाटन के अवसर पर बोल रहे थे। 'इंडिया इंटरनेशनल सेंटर' में हो रहे इस सेमिनार का आयोजन **महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय और केन्द्रीय भारतीय भाषा संस्थान, मैसूर** द्वारा साझा तौर पर किया गया है।

उद्‌घाटन समारोह के दौरान **शैलेंद्र कुमार सिंह** और **एन.एच. इटैगी** द्वारा संपादित पुस्तक **'लिंग्विस्टिक लैंडस्केपिंग इन इंडिया'** का लोकार्पण प्रो. जी.एन. देवी ने किया।

—सम्पादक ✲✲

श्री नेमिचंदजी पाटनी दिवंगत

प्रसिद्ध समाजसेवी, श्रेष्ठिप्रवर पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के महामंत्री नेमिचंदजी पाटनी का दिनांक 20 जनवरी '03 को सायं 4 बजे देहली में हृदयगति रुकने से देहावसान हो गया है। आप 91 वर्ष के थे। दिनांक 21 जनवरी '03 को आगरा में उनका अंतिम संस्कार किया गया। टोडरमल स्मारक भवन, जयपुर में भी 31 जनवरी '03 को सायं दिगम्बर जैन महासमिति, भारत जैन महामण्डल, राजस्थान खादी संघ, अ.भा.दि. जैन विद्वत्परिषद्, अ.भा.दि. जैन युवा परिषद्, राजस्थान जैनसभा, मंदिर महासंघ, अतिशय क्षेत्र महावीरजी आदि भारतवर्ष की जैनसमाज की शीर्षस्थ 33 विभिन्न संस्थाओं शोक सभा आयोजित करके श्रद्धांजलि दी गयी। पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के महामंत्री डॉ.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हुकमचन्द जी भारिल्ल, श्री महावीरजी अतिशय क्षेत्र के अध्यक्ष श्री नरेश कुमार जी सेठी, आर.के. मार्बल्स के निर्देशक श्रीमान् अशोक कुमार जी पाटनी किशनगढ़, भारत जैन महामण्डल के अध्यक्ष श्री सम्पतकुमार जी गदैया, भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् के संरक्षक डॉ. देवेन्द्रकुमार जी शास्त्री नीमच, अतिशय क्षेत्र पदमपुरा के मंत्री श्रीमान् ज्ञानचन्द जी झांझरी, राजस्थान जैनसभा के अध्यक्ष श्रीमान् महेन्द्र कुमारजी पाटनी, प्रख्यात पत्रकार श्री मिलापचन्द जी डण्डिया आदि अनेक महानुभावों ने पाटनी जी के धार्मिक और सामाजिक योगदानों का स्मरण करते हुए अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की। इस अवसर पर उनके भाई सौभाग्यमलजी पाटनी ने उनकी स्मृति में 10 लाख रुपये का पारमार्थिक ट्रस्ट बनाने की घोषणा की।

प्राकृतविद्या-परिवार की ओर से दिवंगत भव्यात्मा को सुगतिगमन, बोधिलाभ एवं शीघ्रनिर्वाण-प्राप्ति की मंगलकामना के साथ विनम्र श्रद्धासुमन समर्पित हैं। —सम्पादक **

104 वर्षीय विद्वान् चुन्नीलाल जी शास्त्री दिवंगत

त्रिशताब्दिदर्शी श्रद्धेय श्री पं. चुन्नीलाल जी शास्त्री (संरक्षक— श्री अ.भा.दि. जैन विद्वत्परिषद् एवं परवार महासभा) 9 मार्च 1899 को जन्में और और वसंत पंचमी गुरुवार दिनांक 6 फरवरी 2003, अर्द्धरात्रि 12.15 पर 104 वर्ष की आयु में समता पूर्वक देह-त्याग कर महा-प्रयाण किया।

अंत समय में मुनिश्री निर्वाणसागर जी ने घर जाकर उन्हें अनेक बार सम्बोधा। फलस्वरूप आपने समताभाव पूर्वक पद्मासन-अवस्था में नश्वर देह का परित्याग किया।

प्राकृतविद्या-परिवार की ओर से दिवंगत भव्यात्मा को सुगतिगमन, बोधिलाभ एवं शीघ्रनिर्वाण- प्राप्ति की मंगलकामना के साथ विनम्र श्रद्धासुमन समर्पित हैं।

—सम्पादक **

बाल ब्रह्मचारी पं. माणिकचन्द्र जी भीसीकर गुरुजी का सल्लेखनापूर्वक देह-विसर्जन

ब्र. माणिकचन्द्र भीसीकर

दिगम्बर जैनसमाज के सुप्रतिष्ठित विद्वान् एवं बाहुबलि ब्रह्मचर्याश्रम एवं विद्यापीठ कुम्भोज-बाहुबलि के वर्तमान संचालक परमसम्मान्य विद्वद्वर्य ब्रह्मचारी माणिकचन्द्र जी जयवंतसा भीसीकर जी ने दिनांक 20 अप्रैल 2003 को प्रात: 5.15 बजे सल्लेखना विधिपूर्वक 87 वर्ष की अवस्था में देहत्याग किया। पूज्य आचार्य समन्तभद्र जी के सुशिष्य श्री भीसीकर जी ने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए लाखों विद्यार्थियों को ज्ञानदान एवं जैनत्व के संस्कार समर्पित किए। आपने 'सन्मति' नामक प्रतिष्ठित मराठी पत्रिका का सम्पादन भी किया और अनेकों पुस्तकें, लेख एवं साहित्यिक रचनाएँ आपकी लेखनी से प्रसूत हुईं। प्राकृत एवं संस्कृत भाषाएँ भी आपके लिए मातृभाषावत् थीं, तथा जैन-आगमों का मूलत: पाठ और विवेचन करने में आपकी अद्भुत क्षमता थी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राकृतविद्या-परिवार की ओर से दिवंगत भव्यात्मा को सुगतिगमन, बोधिलाभ एवं शीघ्रनिर्वाण- प्राप्ति की मंगलकामना के साथ विनम्र श्रद्धासुमन समर्पित हैं।

—सम्पादक ✱✱

अति आवश्यक सूचना

प्राकृतविद्या का आगामी प्रकाश्य-अंक (वर्ष 15, अंक 2, जुलाई-सितम्बर 2003) इस बार 'दशलक्षण-महापर्व-विशेषांक' के रूप में प्रकाशित होगा। सभी विद्वान् लेखकों एवं लेखिकाओं से विनम्र निवेदन है कि वे 'दशलक्षण-महापर्व' के विविध आयामों पर अपने सारगर्भित शोधपरक-आलेख यथाशीघ्र 'प्राकृतविद्या' कार्यालय में प्रकाशनार्थ भेजें। कृपया इतना ध्यान रखें, कि आलेख का आकार प्राकृतविद्या के प्रकाशित पृष्ठों के अनुसार अधिकतम पाँच-छह पृष्ठों का हो। मौलिक एवं अप्रकाशित महत्त्वपूर्ण लेखों को वरीयता दी जाएगी। आपके उदार सहयोग की हमें आतुरता से प्रतीक्षा है।

—सम्पादक

शास्त्र के लिए अपात्र व्यक्ति

'आलस्यो मंदबुद्धिश्च, सुखिनो व्याधिपीडिता:।
निद्रालु: कामकुश्चेति षडैते शास्त्रवर्जिता:।।

—(आचार्य माघनंदि, शास्त्रसार समुच्चय)

अर्थ :— 1. आलसी व्यक्ति, 2. मंदबुद्धिवाला, 3. सुखाभिलाषी (शारीरिक सुख चाहनेवाला), 4. बीमारी से पीड़ित, 5. निद्रा के आवेगयुक्त (जिसे तेज नींद आ रही हो) तथा 6. कामवासना से पीड़ित व्यक्ति —ये छह व्यक्ति शास्त्र के लिए वर्जित हैं; अर्थात् शास्त्र-स्वाध्याय के पात्र नहीं हैं। ◆◆

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रबन्ध सम्पादक की कलम से

लेखकों से अनुरोध

सम्पादक मण्डन के निर्णयानुसार एवं शोध पत्रकारिता के नियमानुसार कतिपय सूचनाएँ अपेक्षित हैं, जिनका विवरण निम्नानुसार है। प्राकृतविद्या के प्राज्ञ लेखकों/विदुषी लेखिकाओं से अनुरोध है कि वे अपनी रचनायें भेजते समय कृपया निम्नलिखित बिन्दुओं के बारे में सूचना देकर हमें अनुगृहीत करें :—

1. आपकी प्रेषित रचना पूर्णतया मौलिक/सम्पादित/अनूदित/संकलित है।
2. क्या प्रेषित रचना इसके पूर्व किसी भी पत्र-पत्रिका, अभिनन्दन-ग्रन्थ आदि में कहीं प्रकाशित है? यदि ऐसा है, तो कृपंया उसका विवरण अवश्य दें।
3. क्या आप प्रेषित रचना 'प्राकृतविद्या' के अतिरिक्त अन्य किसी-पत्रिका आदि में प्रकाशनार्थ किसी रूप में अथवा कुछ परिवर्तन के साथ भेजी? यदि भेजी हो, तो उसका विवरण देने की कृपा करें।
4. क्या प्रेषित रचना किसी सेमीनार/सम्मेलन आदि में पढ़ी गयी है? यदि ऐसा है, तो कृपया उसका विवरण अवश्य दें।
5. 'प्राकृतविद्या' का सम्पादक-मण्डल विचार-विमर्श पूर्वक ही किसी रचना को प्रकाशित करता है, अत: उक्त जानकारियाँ प्रदान कर हमें अनुगृहीत करें; ताकि आपकी रचना के बारे में निर्विवादरूप से निर्णय लिया जा सके।
6. कृपया यह भी लिखें कि 'प्राकृतविद्या' से अस्वीकृत हुये बिना आप अपनी यह रचना अन्य कहीं प्रकाशनार्थ नहीं भेजेंगे।

कृपया अपने लेख/कविता/रचना आदि के साथ उपर्युक्त जानकारियाँ पत्र द्वारा अवश्य प्रेषित करें, तभी रचना का प्रकाशन-निर्णय किया जा सकेगा।

सदस्यों से अनुरोध

यदि आपको पत्रिका नियमित रूप से नहीं मिल रही है, अथवा एकाधिक अंक आ रहे हैं, अथवा आपका पता बदल गया है; तो इनके बारे में पत्र-व्यवहार करते समय सदस्यगण अपनी सदस्यता के क्रमांक (यथा V-23, S-76 आदि) का अवश्य उल्लेख करें। यदि एकाधिक अंक आ रहे हैं, तो उन एकाधिक क्रमांकों का भी उल्लेख करें। तथा आप जिस क्रमांक को चालू रखना चाहते हैं, उसको भी स्पष्टत: निर्दिष्ट करें।

यदि आपके पते में पिन कोड नं. नहीं आ रहा है, या गलत आ रहा है, तो आप सदस्यता-क्रमांक के उल्लेखपूर्वक अपन सही पिनकोड अवश्य लिखें; ताकि आपको पत्रिका समय पर मिल सके। सदस्यता-शुल्क 80/- प्रतिवर्ष के हिसाब से भिजवाएँ।

❖❖

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राकृतविद्या के सम्बन्ध में तथ्य-सम्बन्धी घोषणा

प्रकाशन स्थान	:	18-बी, स्पेशल इन्स्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली-110067
प्रकाशन अवधि	:	त्रैमासिक
प्रकाशक	:	सुरेशचन्द्र जैन
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	कुन्दकुन्द भारती 18-बी, स्पेशल इन्स्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली-110067
मुद्रक	:	महेन्द्र कुमार जैन
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	कुन्दकुन्द भारती 18-बी, स्पेशल इन्स्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली-110067
सम्पादक	:	डॉ. सुदीप जैन
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	कुन्दकुन्द भारती 18-बी, स्पेशल इन्स्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली-110067
स्वामित्व	:	सुरेशचन्द्र जैन मन्त्री, कुन्दकुन्द भारती 18-बी, स्पेशल इन्स्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली-110067

मैं सुरेशचन्द्र जैन एतद्द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार उपर्युक्त विवरण सत्य हैं।

सुरेशचन्द्र जैन
प्रकाशक

प्राकृतविद्या के स्वत्वाधिकारी एवं प्रकाशक श्री सुरेशचन्द्र जैन, मंत्री, श्री कुन्दकुन्द भारती, 18-बी, स्पेशल इन्स्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली-110067 द्वारा प्रकाशित; एवं मुद्रक श्री महेन्द्र कुमार जैन द्वारा, मै. घूमीमल विशालचंद के मार्फत प्रेम प्रिंटिंग वर्क्स' चूड़ीवालान, चावड़ी बाजार, दिल्ली-110006 में मुद्रित। *भारत सरकार पंजीयन संख्या* ***48869/89***

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस अंक के लेखक-लेखिकाएँ

1. डॉ. राजाराम जैन—आप मगध विश्वविद्यालय में प्राकृत, अपभ्रंश के 'प्रोफेसर' पद से सेवानिवृत्त होकर श्री कुन्दकुन्द भारती जैन शोध संस्थान के 'निदेशक' हैं। अनेकों महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों, पाठ्यपुस्तकों एवं शोध-आलेखों के यशस्वी-लेखक भी हैं। आपको वर्ष 2000 का 'प्राकृतभाषा-विषयक' 'राष्ट्रपति सम्मान' समर्पित किया गया है। इस अंक में प्रकाशित 'उत्तरमध्यकालीन इतिहास, साहित्य एवं कला का संगम तीर्थ : गोपाचल' नामक आलेख के लेखक आप हैं।

पत्राचार-पता—महाजन टोली नं. 2, आरा-802301 (बिहार)

2. डॉ० सूर्यकान्त बाली—आप भारतीय इतिहास के अच्छे अध्येता-मनीषी एवं सिद्धहस्त लेखक रहे हैं। आपके द्वारा अनेकों महत्त्वपूर्ण कृतियों का सृजन हुआ है। इस अंक में प्रकाशित 'देश को नाम देने के लिए खुद को भरत बनाना होता है' शीर्षक आलेख आपकी लेखनी से सृजित है।

3. अनूंपचन्द्र न्यायतीर्थ—आप हिन्दी के अच्छे कवि हैं। इस अंक में प्रकाशित 'पूजनीय हैं संत हमारे !' शीर्षक कविता आपके द्वारा लिखित है।

स्थायी पता— 769, गोदिकों का रास्ता, किशनपोल बाजार, जयपुर-302003 (राज.)

4. डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल—आप ओरियंटल पेपर मिल्स, अमलाई में कार्मिक अधिकारी के पद से सेवानिवृत्त हुये, जैनसमाज के अच्छे स्वाध्यायी विद्वान् हैं। इस अंक में प्रकाशित 'भगवान् महावीर की जन्मस्थली : कुण्डपुर (वासोकुण्ड)' शीर्षक आलेख आपकी लेखनी से प्रसूत है।

पत्राचार-पता—बी.-369, ओ.पी.एम. कालोनी, अमलाई-484117 (म.प्र.)

5. डॉ. रमेशचंद जैन—आप भी प्राच्य भारतीय इतिहास एवं पुरातत्त्व के गवेषी विद्वान् हैं। इस अंक में प्रकाशित 'स्वास्तिक का चक्रव्यूह' शीर्षक आलेख आपकी लेखनी से प्रसूत है।

स्थायी पता—मौलाना आज़ाद प्रौद्योगिकी महाविद्यालय, भोपाल-462007 (म.प्र.)

6. प्रो. (डॉ.) शशिप्रभा जैन—आप श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ (मानित विश्वविद्यालय), नई दिल्ली में शिक्षाशास्त्र विभाग की विभागाध्यक्ष एवं आधुनिक ज्ञान-विज्ञान संकाय की प्रमुख हैं। इस अंक में प्रकाशित आलेख 'प्राच्य भारतीय अभिलेख एवं प्राकृतभाषा' आलेख आपके द्वारा लिखित है।

स्थायी पता—प्रोफेसर्स फ्लैट, श्री ला.ब.शा. राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली-16

7. डॉ. उदयचंद जैन—सम्प्रति सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.) में प्राकृत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विभाग के अध्यक्ष हैं। प्राकृतभाषा एवं व्याकरण के विश्रुत विद्वान् एवं सिद्धहस्त प्राकृत कवि हैं। इस अंक में प्रकाशित 'पज्जावरण-रक्खणा (पर्यावरण रक्षण)' शीर्षक की प्राकृत कविता आपकी लेखनी से प्रसूत हैं।

स्थायी पता—पिऊकुंज, अरविन्द नगर, ग्लास फैक्ट्री चौराहा, उदयपुर-313001 (राज.)

8. डॉ. पद्मजा आ. पाटील— आप शिवाजी विद्यापीठ कोल्हापुर में इतिहास विभाग में प्राध्यापिका हैं। इस अंक में प्रकाशित आलेख 'आण्णासाहब लट्ठे जी का जैन स्त्री-विषयक चिंतन और कार्य' आपके द्वारा लिखित है।

पत्राचार पता— इतिहास विभाग, शिवाजी विद्यापीठ, कोल्हापुर (महाराष्ट्र)

9. डॉ. सुदीप जैन—श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली में 'प्राकृतभाषा विभाग' में वरिष्ठ उपाचार्य हैं। अनेकों पुस्तकों के लेखक, सम्पादक। प्रस्तुत पत्रिका के 'मानद सम्पादक'। इस वर्ष आपको प्राकृतभाषा-विषयक 'राष्ट्रपति-सम्मान' (युवा) से सम्मानित घोषित किया गया है। इस अंक में प्रकाशित सम्पादकीय-आलेख एवं पुस्तक-समीक्षाएँ आपके द्वारा लिखित हैं तथा 'जैनधर्म और भगवान् महावीर के बारे में महापुरुषों के उद्गार' शीर्षक संकलन आपके द्वारा चयनित है।

स्थायी पता—बी-32, छत्तरपुर एक्सटैंशन, नंदा फार्म के पीछे, नई दिल्ली-110030

10. इंजी. अरुण कुमार जैन— आप भारतीय रेल में वरिष्ठ इंजीनियर हैं, तथा कई वर्षों से अनवरत साहित्य-साधना कर रहे हैं। इस अंक में प्रकाशित 'हे पूज्य गुरु शत-शत प्रणाम' नामक हिन्दी कविता आपके द्वारा लिखित है।

पत्राचार पता— सी-12/एफ. चन्द्रशेखरपुर रेलवे कालोनी, भुवनेश्वर-751023 (उड़ीसा)

11. डॉ. वीरसागर जैन—आप हिन्दी भाषा-साहित्य एवं जैनदर्शन के विख्यात् विद्वान् हैं। सम्प्रति आप श्री ला.ब.शा.रा. संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली में 'जैनदर्शन विभाग' के अध्यक्ष हैं। इस अंक में प्रकाशित 'प्राकृतभाषा में लोरी हिन्दी से प्राकृत-रूपान्तरण' आपके द्वारा रचित है।

पत्राचार पता— श्री कुन्दकुन्द भारती, नई दिल्ली-110067

12. श्रीमती रंजना जैन—आप श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ की प्राकृतभाषा विभाग की वरिष्ठ शोध-छात्रा हैं। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की जे.आर.एफ. नामक फैलोशिप भी आपको प्राप्त है। इस अंक में प्रकाशित 'आदर्श' और 'आत्मा' शीर्षक आलेख आपके द्वारा लिखित है।

स्थायी पता—बी-32, छत्तरपुर एक्सटैंशन, नंदा फार्म के पीछे, नई दिल्ली-110030

13. प्रभात कुमार दास—आप प्राकृतभाषा एवं साहित्य के शोधछात्र हैं। इस अंक में प्रकाशित आलेख 'विण्णाणं किं? भूयं पजोगं' कविता आपके द्वारा लिखित है।

पत्राचार पता—शोधछात्र प्राकृतभाषा विभाग, श्री ला.ब.शा.रा.सं. विद्यापीठ, नई दिल्ली-16

14. अप्पण्ण नरसप्पा हंजे एवं टी.आर. जोडट्टी— आप प्राकृतभाषा के शोधछात्र हैं। इस अंक में प्रकाशित आलेख 'बंकापुर के जिनालय' आपके द्वारा लिखित है।

पत्राचार पता— प्राच्य भारतीय इतिहास एवं अभिलेख विज्ञान विभाग, कर्नाटक विश्वविद्यालय, धारवाड़-580003 (कर्नाटक)

❖❖

4823

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उदयचन्द्र जैन
वाराणसी

"श्रेयांसि बहुविघ्नानि"

"विघ्नैः मुहुर्मुहुरपि, प्रतिहन्यमानाः।
प्रारब्धमुत्तमजनाः न परित्यजन्ति।।" —*(भर्तृहरिः)*

जीवन के किसी भी क्षेत्र में अन्तिम पवित्र ध्येय तक पहुँचने से पहले अनेकों विघ्न (श्रेयांसि बहुविघ्नानि) बाधाओं को पार करना पड़ता है। जो दृढ़-निश्चयी नहीं होते, जिनका सुसंकल्प अस्थिर होता है, वे तो कुछ विघ्नों का सामना होते ही हिम्मत हार जाते हैं। अन्य लोग पथभ्रष्ट भी हो जाते हैं। परन्तु सफल वही होता है, जो उपर्युक्त शब्दों के अनुसार विघ्नों से बार-बार प्रताड़ित होने पर भी उत्तम पुरुष पथ से तनिक भी नहीं डिगता।

'निमित्त शास्त्र के वेत्ताओं का मत है कि जिस व्यक्ति के जीवन पर एक से अधिक बार प्रामाणिक संकट, आपत्ति और विपत्ति उपस्थित हुए हों, जिनसे उसकी रक्षा प्रकृति ने की हो, वह व्यक्ति सचमुच में लोकोत्तर महापुरुष होता है। उसके द्वारा विश्व में असंख्यात प्राणियों का कल्याण होता है। उसका जीवन केवल उसके लिए ही नहीं, लोक के लिए भी है।'

—आचार्य विद्यानंद

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रुतपंचमी-महापर्व पर विशेष

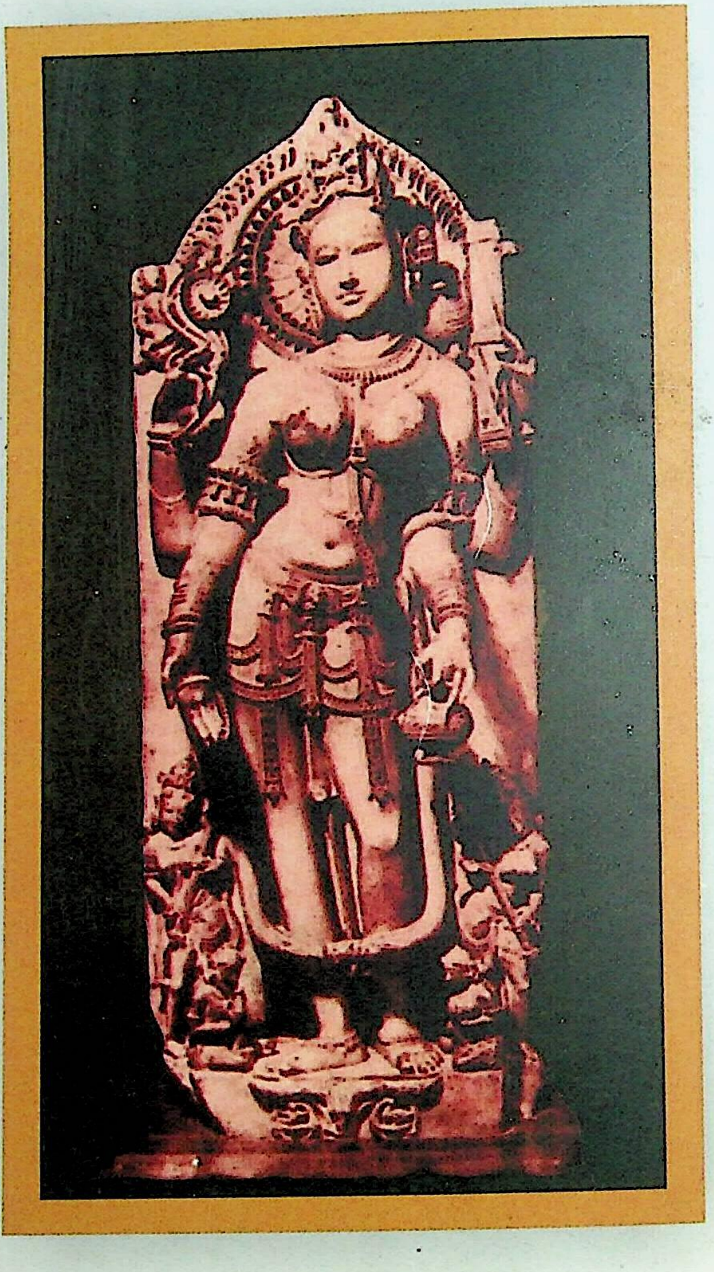

जैन सरस्वती-प्रतिमा
(राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi